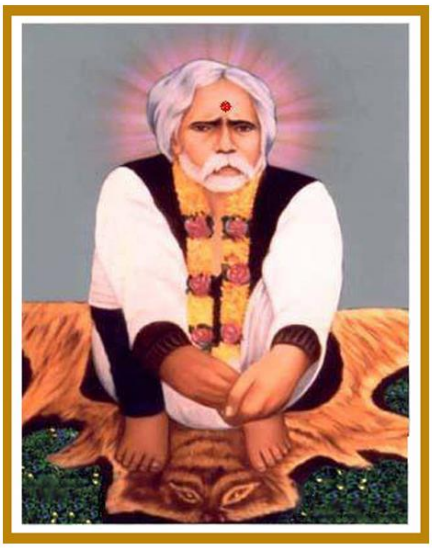

OM SHRI GURU PARAMATMANE NAMAH

MANOHAR JIVAN DARSHAN

SHRI SHRI 1008 SHRI MANOHAR DAS AGHORI

जनम (प्रगटीकरण) - Birth (Manifestation)
भाद्रपद शुक्ला - Bhadrapada Shukla
जलझुलनी एकादशी - Jaljulni Ekadashi
रात्रि ११ बजे पुष्य नक्षत्र में - 11 pm in the constellation Pushya
सम्वत् १९५२ (सन् 1894) - Samvat 1952 (AD 1894)

सत्यलोकवास (निर्वाण) - Satyalokwas (Nirvana)
अगहन सुदी ६ मंगलवार - Agahan Sudi 6 Tuesday
सुबह ५ बजे - 5 am
सम्वत् २०१५ (16 दिसम्बर 1958) - Samvat 2015 (16 December 1958)

WWW.AGHORI.IT

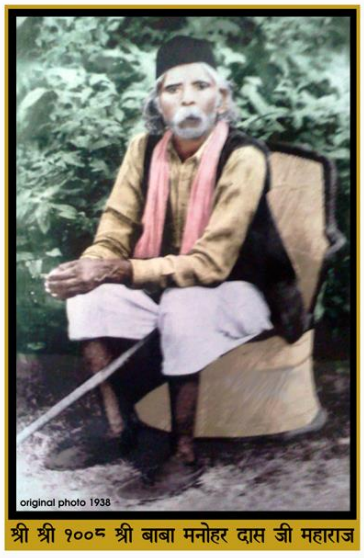

श्री श्री १००८ श्री बाबा मनोहर दास जी महाराज

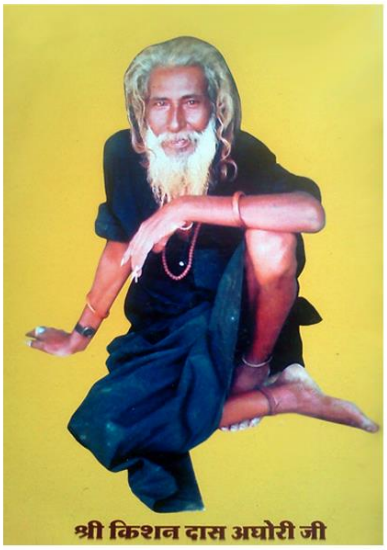
श्री किशन दास अघोरी जी

This book is the cleaning job done on photocopies of an original book,
now unobtainable, recovered by Radhika Dasi Aghori.
Some parts of the book were not legible necessitating a restoration.

In memory of Baba Manohar Das Ji, Baba Kishan Das Aghori guru's.

With love and devotion
Govinda Das Aghori

Questo libro è il lavoro di pulizia fatto su delle fotocopie di un libro originale,
ormai introvabile, recuperato da Radhika Dasi Aghori.
Alcune parti del libro non erano ben leggibili rendendo così necessario un restauro.

In ricordo di Baba Manohar Das Ji guru di Baba Kishan Das Aghori.

Con amore e devozione
Govinda Das Aghori

अध्याय-7

।। ॐ श्री गुरु परमात्मने नमः ।।

बाबा मनोहरदास जीवन दर्शन

सिद्ध शिरोमणि संत

विषयी, साधक और सिद्ध-

संसार में प्रायः मानवों की तीन श्रेणी होती हैं। अधिक संख्या में तो ऐसे लोग होते हैं जिनका जीवन विषय-विलासों में ही डूबा रहता है, अपनी इन्द्रियों के विषयों की तृप्ति में ही जिनका अधिकांश समय व्यतीत होता है। क्षणिक सुख के लिए वे दीन-दुनिया की सुध-बुध खोए रहते हैं। इस प्रकार के लोगों की गणना विषयी पुरुषों में होती है।

यद्यपि आज तक कोई भी इन विषयों से तृप्त नहीं हुआ ज्यों-ज्यों मानव विषयों का सेवन करता है, वैसे-वैसे ही उन्हें और भोगने की कामना बलवती होती जाती है। मानव की बुद्धि विषयों के संग से भ्रष्ट हो जाती है बुद्धि के नाश हो जाने के फलस्वरूप मानव का पतन हो जाता है और ऊधोगति की प्राप्ति होती है।

मानव की दूसरी श्रेणी है साधकों की। जब भगवद् कृपा से विषयों से वैराग्य होता है तो मनुष्य साधना के लिए संकल्प करता है। लेकिन जिनकी कामनाएँ शान्त नहीं हुई हैं लौकिक पारलौकिक भोगों की लालसा मिटी नहीं और जिनके मन-इन्द्रियाँ बस में नहीं, वे कभी भी साधक नहीं हो सकते। क्योंकि साधना का प्रथम सोपान दृढ़ वैराग्य है। बिना वैराग्य के मन और इन्द्रियों के व्यापार नहीं रुक सकते हैं। मन की वृत्तियों का विषय भोगों से उपराम होकर भगवान् की भक्ति की ओर होता है तभी साधना का श्री गणेश हुआ समझो। जो मनुष्य विषय विकारों से हटकर ईश आराधना का संकल्प कर दृढ़ इच्छा शक्ति से साधना में लग जाता है वह साधक कहलाता है। बाबा श्री मनोहरदास जी महाराज का बाल्यकाल भी ईश साधना में व्यतीत हुआ था। उन्होंने प्रायः अधिकांश समय उपनिषदादि शास्त्रों के अध्ययन, मनन और निदिध्यासन में लगाया था। सामान्य मनुष्यों की भाँति विषयों में और विषयासक्त पुरुषों के संग में उन्हें कोई रुचि न थी। जैसा कि पूर्व में वर्णन किया जा चुका है उन्होंने साधना में विघ्न पड़ने के कारण ही पुलिस सेवा से पलायन किया था। वे जन्म से ही साधना में लीन रहा करते थे। गुरुदेव की शरण में जाकर उन्होंने उनके निर्देशानुसार साधना प्रारम्भ की। गुरुदेव श्री श्री 1008 श्री गणेशदास जी महाराज से विधिवत दीक्षा ग्रहण करके उनके बतलाए साधना पथ पर चलकर उन्होंने घोर तपस्या की। शास्त्रों में यम और नियमों का जो वर्णन किया गया है। बाबा ने उन सबको अपने जीवन का अभिन्न अंग बनाया था।

उन्होंने अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना) असंगता, लज्ञा, असंचय वृत्ति (अपरिग्रह) अर्थात आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का संग्रह न करना, आस्तिकता, ब्रह्मचर्य, मौन स्थिरता, क्षमा और अभय आदि यमों का भली-भाँति पालन किया तथा शौच, जप-तप, हवन, श्रद्धा, अतिथि सेवा, ईश आराधना, परोपकार संतोष एवं गुरुदेव की सेवा आदि नियमों में बद्ध होकर अपनी साधना का विकास किया था।

जव तक साधक उपर्युक्त यम नियमों का सांगोपांग पालन नहीं करता उसे सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती साधक चाहे सकाम हो या निष्काम दोनों के लिए ही इनका पालन करना आवश्यक होता है। बाबा महाराज के जीवन में उपर्युक्त गुणों की बाल्यकाल से ही देखा गया, वे प्रायः एकांत सेवन कर किसी अज्ञात तत्व के चिन्तन में मग्न रहा करते थे। धर्म पालन और ईशाराधना के फलस्वरूप आपके चित्त में सत्व गुण की वृद्धि होकर परम शान्ति प्राप्त हो गई थी। उन्होंने अपने गुरुदेव के सान्निध्य में रहकर घोर साधना की और अब वे सिद्ध मनोहरदास थे। उन्हें अपने गुरुदेव का पूर्ण आशीर्वाद प्राप्त हुआ तथा साधक से वे अब सिद्धावस्था को प्राप्त महात्मा बन गए। जव साधक इन्द्रिय प्राण और मन को अपने वश में करके अपना चित्त ईश्वर में लगाता है भगवान की धारणा करने लगता है, तब उसके समक्ष अनेकों रिद्धियाँ उपस्थित होती हैं। ठीक ऐसा ही ''बाबा महाराज'' की साधना के परम विकासोपरांत हुआ। बाबा ने विषय भोगों का सेवन तो कभी किया ही नहीं मन से भी विषय वासनाओं का चिन्तन नहीं किया। उन्होंने अपने मन को ईशाराधना में जोड़ दिया था। कहते हैं कि भगवान भजन करने वाले साधक से बहुत प्रसन्न होते हैं, लेकिन जो बाल्यकाल से ही विषयों से वैराग्य प्राप्त कर अपने मन-प्राणों को भगवद्राधना में लगा देता है भगवान उससे बहुत अधिक प्रसन्न होते हैं।

''बाबा महाराज'' के बाल्यकाल का वर्णन करते समय यह कहा जा चुका है कि वे जन्म के फकीर थे। हमेशा भगवान के नाम जप और स्वाध्याय सत्संग में ही उनका अधिकांश समय व्यतीत होता था। काल क्रम से जब दैववश उन्हें पुलिस सेवा में जाना पड़ा तो वहाँ भी उन्होंने अपनी साधना को पूर्ववत जारी रखा। नित्य नियम से भजन पूजन में अपना समय व्यतीत करना उन्हें ईश आराधना में इतनी लग्न थी कि उन्हें यह भी याद नहीं रहा कि सरकारी ड्यूटी के समय गीता पाठ सरकारी सेवा नियमों के विरुद्ध है। जब वे प्रातः ड्यूटी पर थे उस समय उनके पाठ का भी समय या। अपनी जेब से गीता की पोथी निकाल कर उसका स्वाध्याय शुरु कर दिया, जिसके परिणामस्वरूप उन्हें फटकार खानी पड़ी ''ड्यूटी के समय यह नहीं चलेगा–एक समय दो काम नहीं। लेकिन गीता में तो भगवान के स्पष्ट शब्दों में अर्जुन को यह पाठ पढ़ाया कि तुम युद्ध भी करो और मेरा स्मरण भी करो, परन्तु बाबा साहब ने दोनों कामों में से एक ही काम चुना और वह था ईशाराधना। उन्होंने

सरकारी सेवा बन्धन को तुरन्त तोड़ दिया और उदयपुर के जंगलों में जहाँ गुरुदेव गणेशदास जी की तपोस्थली थी उनकी शरण में जाकर साधना के लिए कमर कस ली साधना में उनका मनमग्न हुआ और उन्होंने आत्म साक्षात्कार किया।

कहते हैं कि जब साधक साधना प्रारम्भ करता है तो प्रथम उसे रजोगुण तमोगुण पर विजय करनी होती है क्योंकि रजोगुण–काम, क्रोध और लोभादिक वृत्तियों का जनक है। रजोगुण तमोगुण के शांत हो जाने के बाद साधक में शुद्ध सत्व गुण की वृद्धि होती है। जिसके हृदय में सत्व गुण की वृद्धि होती जाती है उसे अविद्या जन्य जड़-चेतन की ग्रंथि का छोर दिखलाई पड़ता है। यह जीव ईश्वर का ही अभिन्न अंश है जो गुण ईश्वर में है वे ही चेतनता अमलता और सहज सुख की अवस्था आदि गुण इस अविनाशी जीव में भी है। लेकिन वह अपने सहज धर्म को अविधा के कारण भूल जाता है और जड़ माया के गुणों को अपने से आरोपित कर लेता है, बस यहीं से यह बन्धन पड़ जाता है जो–''ईश्वर अंश जीव अविनाशी। चेतन अमल सहज सुख रासो''। अविनाशी अपने को विनाशी मानने लगता है। विनाशी संसार के विकास शरीर के विकास में अपना विकास तथा शरीर एवं संसार के विनाश में ही अपना विनाश मानने लगता है। जो (सहज सुख राशि था अब वही माया) अविद्या के गुणों को अंगीकार करके विनाशी एवं सहज दुःख की राशि हो गया। जो चेतन था वह अपने को जड़ जो अमल था वह विकारी हो गया यह सब अविद्या के कारण हुआ। साधना के द्वारा शुद्ध सत्व गुण की वृद्धि पर जीव को परम तत्व का दर्शन होता है। जो माया के गुणों से बँधा था। उसे अब जड़ चेतन की यह मिथ्या ग्रन्थि स्पष्ट दिखलाई देती है। जब साधक के हृदय में आत्म ज्ञान का प्रकाश होने लगता है तो अविद्या का परिवार समाप्त हो जाता है।

आत्म अनुभव सुख सुप्रकाशा।
तव भव मूल भेद भ्रम-नासा॥
प्रबल अविद्या कर परिवारा।
मोह आदि तम मिटहि अपारा॥

इस प्रकार मोह आदि समस्त दुःख के मूल ही समाप्त हो जाते है। जीव पुन अपने सच्चिदानन्द स्वरूप में लीन होने लगता है।

बाबा श्री मनोहरदास जी महाराज ने अपनी साधना के बल से आत्मसाक्षात्कार किया था लगभग 12 वर्षों की घोर कठिन साधना के पश्चात पूर्ण सिद्धहस्थ में हो पुनः अपने जन्म स्थली छोटी काशी वैर में पधारे। उनके समकालीन लोगों का कहना है कि ''बाबा'' में अनेक प्रकार की अलौकिक शक्तियाँ देखी गईं। यथा–

उन्हें कभी भूख-प्यास का अनुभव नहीं होता था, वे बहुत दूर की बातों को अपने स्थान पर सुन लिया करते थे। दूसरे के मन में क्या है इसका उन्हें पता चल जाता था। वे एक साथ कई स्थानों पर एक ही समय देखे गये। सर्दी-गर्मी आदि

भौतिक विकारों का उन पर कोई प्रभाव नहीं देखा था। वे भूत-भविष्य एवं वर्तमान के पूर्ण ज्ञाता थे। भविष्य वक्ता के रूप में तो उनकी प्रसिद्धि ही हो गई थी। कुछ समयोपरांत क्या घटने वाला है, इसकी जानकारी वे पूर्व में ही दे दिया करते थे मृतात्माओं को जीवनदान, पुत्रहीनों को पुत्र, निर्धनों को मालामाल कर देना, काया क्लेशों को दूर करना, एक कोढ़ी को उन्होंने पूर्ण स्वस्थ कर दिया था। मन में स्थित भाव कुभाव को उन्हें पूर्ण जानकारी हो जाती थी, वे इच्छानुसार रूप धारण करने की शक्ति से सम्पन्न थे। उनकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं हो सकता था अर्थात जो वह कह देते थे वह अवश्य होकर रहता था। उनकी भविष्य वाणी पूर्ण रूपेश घटित होकर रहती थी। मैंने ''बाबा साहब'' की अलौकिक चमत्कार पूर्ण घटनाओं को उनके समकालीन व्यक्तियों द्वारा सुनकर अलग से सत्य संस्मरणों के रूप में लिखा है। अतः यहाँ उन घटनाओं को पुनरावृत्ति नहीं करना चाहता। यहाँ तो मैं सिर्फ यह सिद्ध करना चाहता हूँ कि जीव जब साधना के उच्च सोपान पर आरूढ़ होता है तो उसके साधना पथ में सिद्धियाँ स्वतः प्रकट होती हैं। ऐसा ही बाबा महाराज की योग साधना के दौरान हुआ। जब साधक अपने अथक प्रयासों के फलस्वरूप अविद्या का उल्लंघन करने लगता है तो माया (अविद्या) उसके साधना पथ में विघ्न रूप सिद्धियों को भेजती है जिससे वह अविद्या की ग्रन्थि को नहीं खोल सके–

छोरत ग्रंथि जान खगराया। विघ्न अनेक करे तब माया॥
रिद्धि सिद्धि प्रेरइ बहु भाई। बुद्धिहिं लोभ दिखावहिं आई॥

इस प्रकार साधारण साधक रिद्धि सिद्धियों के भ्रम जाल में फँसकर अपनी साधना के पथ से विमुख हो जाता है। ''बाबा महाराज पक्के गुरु के योग्य शिष्य थे। उन्हें साधना पथ के विघ्नों की पूर्ण जानकारी अपने गुरुदेव से प्राप्त हुई थी। वे जानते थे कि सिद्धियों का प्रलोभन कितना अनर्थकारी है। उन्होंने उनकी तरफ कोई ध्यान नहीं दिया। क्योंकि बाबा साहब स्थिर बुद्धि के साधक थे। उनके जीवन में विषय रस नाममात्र का भी नहीं था। वे लोकेषणा और आत्म प्रकाशन वृत्ति से सर्वथा मुक्त थे। अतः सिद्धियाँ उनका कुछ अहित न कर सकीं–उन्होंने उनकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया।

होय बुद्धि जौं परम सयानी। तिन्ह तन चितव न अनहित जानी॥

इस प्रकार सिद्धियों के प्रयोग होनी वाली हानि को वह अच्छी तरह जानते थे अतः जान बूझकर उन्होंने उनका कोई प्रयोग नहीं किया। लेकिन शक्ति सामर्थ्य और योग्यता कहीं छुपाए छूपती है? जो गागर जल से पूर्ण होती है उससे तो कुछ जल कण झलक ही पड़ते हैं। पुराणों में भगवान के अनेक अवतारों की कथाएँ आती हैं। यद्यपि वे सामान्य मानव के रूप में इस धरा धाम में पधारे थे। लेकिन उनकी अलौकिकता छुपाएँ न छुपी भगवान ने राम एवं कृष्ण के रूप में जो अवतार लिया तो मानवी लीला के साथ ही उनका ऐश्वर्य भी दिखाई दिया। ''बाबा महाराज देखने से एक साधारण इन्सान ही थे। लेकिन उनके अन्दर भक्ति ज्ञान और वैराग्य का

सागर हिलोरें लेता दिखाई पड़ता था। उनके पास जो जिस भाव को लेकर आता था बाबा–उसे तदानुसार ही फल प्रदान करते। वे कलि काल कल्पतरु थे। अनेकों घटनाएँ जो पूर्ण सत्य थी लोगों ने अनुभव की उनसे इन बातों की पुष्टि होती है कि बाबा अपने समय के महान सिद्धपुरुष थे। उन्होंने अपने को ईश्वर में लीन कर लिया था। वे इस संसार में रहते हुए भी इससे न्यारे थे। सिद्धियों का या अन्य अलौकिक चमत्कारों का प्रदर्शन कर लोक रंजन करना उनका उद्देश्य कतई न था। हाँ दीन-दुखियों की सेवार्थ अगर कहीं कोई अनहोनी हो जाती थी तो वह बात लोक प्रसिद्ध हो जाती थी। सूर्यनारायण जव प्रातः उदय होते हैं तो वह कोई ढोल बजाकर संसार को नहीं कहते कि मैं सूर्य, उदय हो कर अन्धकार का नाश कर रहा हूँ''। वरन् संसार उनके प्रचण्ड तेज के सामने स्वयं नतमस्तक होता है, और अन्धकार स्वयं ही समाप्त हो जाता है। अतः तेजस्वी पुरुषों की शक्ति कहीं न कहीं प्रकट हो ही जाती है। साधकों की जानकारी हेतु सिद्धियों के बारे में शास्त्रों में वर्णित कुछ संक्षिप्त जानकारो देना चाहूंगा क्योंकि कुछ लोग सिद्धियों के बारे में भ्रांत धारणाएँ रखकर साधना का प्रारम्भ मात्र सिद्धि प्राप्त करने को ही करते हैं। लेकिन योग्य गुरु के अभाव में उन्हें अनेक प्रकार के शारीरिक एवं मानसिक क्लेशों का भाजन होना पड़ता है। जैसा कि हम पूर्व नें वर्णन कर चुके हैं कि ''बाबा महाराज ने भगवान की प्राप्ति हेतु अपनी साधना की थी और पूर्ण आत्म साक्षात्कार के पश्चात वे ब्रह्म स्वरूप होकर अपनी जन्म स्थली एवं साधना स्थली वैर पधारे थे। उन्होंने सिद्धि प्राप्ति के लिए साधना नहीं की थी। वास्तव में ईश आराधना का प्रमुख उद्देश्य निज स्वरूप की प्राप्ति, सहज स्वरूप की प्राप्ति, या प्रभु प्राप्ति ही है। जो भूल से अज्ञानवश सिद्धि हेतु साधना करता है, उसे काया क्लेश एवं श्रम ही हाथ लगती है।

योग की विविध धारणाएँ एवं सिद्धियाँ–धारणा योग के पारगामी योगियों ने कुल अठारह प्रकार की सिद्धियाँ बतलाई हैं। उनमें से आठ प्रकार की सिद्धियाँ तो भगवान में ही निवास करती हैं दूसरों में तो कुछ न्यूनांश ही भगवद्प्रदत्त होती हैं। दस सिद्धियाँ सत्व गुण के विकास से भी मिल जाया करती हैं। उनमें तीन सिद्धियाँ शरीर से सम्बन्ध रखने वाली हैं–''अणिमा महिमा और लघिमा, इन्द्रियों की एक सिद्धि है ''प्राप्ति''। लौकिक एवं पार लौकिक पदार्थों का इच्छानुसार अनुभव कराने वाली सिद्धि है–''प्राकाम्य'' माया और उसके कार्यों को इच्छानुसर संचालित करना ''ईशिता'' नाम की सिद्धि है। विषयों में रहते हुए भी उनमें आसक्त न होना ''वशिता'' है और जिस-जिस सुख की कामना करे, उसकी सीमा तक पहुँच जाना ''काम वशायिता'' नाम की आठवीं सिद्धि हैं। ये आठों प्रकार की सिद्धियों के एकमात्र अधिष्ठान भगवान ही है। उनमें यह सभी स्वभाव से ही निवास करती हैं। जिन्हें भगवान प्रदान करना चाहते हैं अर्थात साधना से प्रसन्न होकर जिस साधक को भगवान इन्हें प्रदान करना चाहते हैं उन्हें पूर्णरूपेण नहीं एक अंशमात्र ही प्राप्त होती है। वास्तव में तो इनके प्रधान निवास स्थान और स्वामी भगवान ही है। उपर्युक्त आठ प्रकार की सिद्धियों के अतिरिक्त भी अनेक सिद्धियाँ है जैसे–शरीर में भूख

प्यास आदि वेगों का न होना, बहुत दूर की वस्तु को देख लेना, बहुत दूर की बात को सुन लेना, मन के साथ ही शरीर का उस स्थान पर पहुँचना, जो इच्छा हो वही रूप बना लेना, दूसरे के शरीर में प्रवेश करना, इच्छानुसार शरीर छोड़ना, अनेक प्रकार के स्वर्गीय दृश्यों में दर्शन, संकल्प की सिद्धि सब जगह सब के द्वारा आज्ञा पालन ये सिद्धियाँ साधना के द्वारा रजोगुण एवं तमोगुण पर विजय प्राप्त करने तथा सत्व गुण के विकास से भी प्राप्त हो जाया करती हैं। सामान्य कोटि के साधकों को भी कभी-कभी ये सिद्धियाँ प्राप्त हो जाया करती हैं। विशेष आश्चर्य की बात तो यह है कि कभी-कभी ये सिद्धियाँ प्राप्त हो जाया करती हैं। विशेष आश्चर्य की बात तो यह है कि कभी-कभी जिनको यह प्राप्त होती हैं उन्हें भी पता नहीं चल पाता कि उनकी साधना के फलस्वरूप उन्हें अमुक सिद्धि प्राप्त हो गई है। दूसरे लोगों को जिन्हें इनका आभास हो जाता है वा कोई चमत्कार देखने में आ जाता है तो ही मालूम होती है। यथा–हमने किसी दिन कोई संकल्प (कामना) की और देव योग से उसी दिन वह संकल्प फलित हो गया तो हमें बड़ा आश्चर्य होता है। जो सिद्धियाँ बाबा श्री मनोहरदास जी महाराज में दृष्टिगोचर होती थीं, उनमें प्रमुखतः–

1. भूत-भविष्य एवं वर्तमान की बात जान लेना,
2. शीत उष्ण सुख-दुःख तथा राग द्वेष के बस में न होना,
3. दूसरे के मन की बात जान लेना,
4. अग्नि, सूर्य, जल तथा विष आदि की शक्तियों को स्तम्भित कर देना,
5. किसी से भी पराजित न होना।

उपर्युक्त पाँचों प्रकार की सिद्धियाँ प्रमुखतः योगियों को प्राप्त होती हैं। उपर्युक्त पाँच अतिरिक्त बाबा साहब को और अनेकों सिद्धियाँ जिनका वर्णन ऊपर किया गया है स्वाभाविक रूप से प्राप्त थीं, जिनके प्रभाव समय-समय पर श्रद्धालुओं ने अनुभव किये थे। हमने इनका वर्णन प्रत्यक्षदर्शियों द्वारा सुनाए संस्मरणों के द्वारा पूर्व में किया है। यहाँ पर किस प्रकार की धारणा से कौन-सी सिद्धि प्राप्त होती है, साधकों और पाठकों की जानकारी हेतु वर्णन करना आवश्यक समझता हूँ–

1. अणिमा सिद्धि–पंच भूतों की सूक्ष्म तन्त्राएँ भगवान का शरीर ही हैं जो साधक भगवान के उस शरीर की उपासना करता है और अपने मन को तदाकार बनाकर उसी में लगा देता है और किसी अन्य वस्तु का चिन्तन नहीं करता उसे अणिमा नामक सिद्धि प्राप्त हो जाती है। अर्थात साधक अत्यन्त सूक्ष्म रूप धारण कर चट्टान आदि में भी प्रवेश कर सकता है।

2. **''महिमा''**–जो साधक अपने को महतत्त्वाकारं बना लेता है उसे महिमा नाम की सिद्धि प्राप्त होती है इसमें साधक बड़े से बड़ा रूप बना सकता है।

3. **''लघिम''**–जो योगी वायु आदि चार भूतों के परमाणुओं को भगवत स्वरूप समझकर उनके चिन्तन में अपने मन को तदाकार कर देता है उसे ''लघिमा''

नामक सिद्धि प्राप्त होती है, इससे साधक सूक्ष्म रूप बनाने की सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है।

4. "प्राप्ति"–सात्विक अहंकार को भगवान का स्वरूप ही मानकर जो साधक अपने मन का योग करता है उसे प्राप्ति नामक सिद्धि प्राप्त होती है। वह समस्त इन्द्रियों का अधिष्ठाता हो जाता है।

5. प्राकाम्य–जो पुरुष महतत्वाभिमानी सूत्रात्मा में चित्त की धारणा करता है उसे प्राकाम्य नामक सिद्धि प्राप्त होती है, इसके फलस्वरूप इच्छानुसार भोगों की प्राप्ति हो जाती है।

6. "ईशित्व"–जो साधक त्रिगुणमयी माया के स्वामी भगवान के विश्व रूप की अपने चित्त में प्रवल धारणा करके तथा अमरता प्राप्त कर लेता है उसे "ईशित्व" नामक सिद्धि प्राप्त होती है। इस प्रकार के साधक को शरीरों और जीवों को अपने इच्छानुसार प्रेरित करने की सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है।

7. "वशिता"–जो योगी भगवान के नारायण स्वरूप में मन को लगाकर तदाकारता प्राप्त करता है उसे यह सिद्धि प्राप्त हो जाती है उसमें भगवान के स्वाभाविक गुण प्रकट होने लगते हैं उसके बस में सभी रहते है।

8. "कामावसायिता"–जो साधक भगवान के निर्गुण ब्रह्म स्वरूप में अपने चित्त की धारणा करता है उसे परमानंदस्वरूपणी "कामावसायिता" नामक सिद्धि प्राप्त होती है। इसके मिलने पर साधक की सारी कामनाएं पूर्ण होकर कामनाओं का भी नाश हो जाता है तथा जीव परमशान्ति का अनुभव करने लगता है।

उपर्युक्त आठों सिद्धि प्रमुख रूप से भगवान में ही निवास करती हैं, लेकिन जो साधक अपनी साधना और गुरुदेव की सेवा द्वारा भगवान को सन्तुष्ट कर देता है उन्हें भी भगवान एक सीमित मात्रा में अंश रूप से इन्हें प्रदान कर सुखी करते हैं। लेकिन हजारों लाखों में एक साधक ही इनमें से कुछ प्राप्त करने की योग्यता रखते हैं।

योगियों द्वारा प्राप्त अन्य सिद्धियाँ और उनकी धारणाएँ

1. दूरश्रवण की शक्ति-

जो साधक समष्टि प्राण स्वरूप आकाशात्मक भगवान के स्वरूप में अपने मन चित्त को लगाकर तदाकार हो जाता है और जो अनउद नाद का चिन्तन करता है उसे दूर की वात को सुनने की शक्ति प्राप्त हो जाती है। वह विविध पक्षियों की बोली भी सुन सकता है, समझ सकता है।

2. दूरदर्शन नामक सिद्धि–जो योगी नेत्रों को सूर्य और सूर्य को नेत्रों में संयुक्त कर मन ही मन भगवान का ध्यान करता है। उसकी, दृष्टि सूक्ष्म हो जाती है तथा दूर देश में स्थित वस्तु एवं व्यक्ति को भी देख सकता है। बाबा महाराज कहा करते थे कि "लाला! जहाँ से सूरत उगता है और जहाँ छुपता है वहाँ तक हमारी

नजर है।'' मनोजब नामक सिद्धि मन और शरीर को प्राण वायु के सहित भगवान में धारण करने पर मनोजब नामक सिद्धि प्राप्त हो सकती है इसके प्रभाव से योगी जहाँ जाने का संकल्प करता है तत्काल उसी स्थान पर पहुँच जाता है। परकाया प्रवेश जो योगी दूसरे के शरीर में प्रवेश करना चाहे वह ऐसी दृढ़ धारणा करें कि मैं उसी शरीर में हूँ। ऐसी धारणा से उसका प्राण वायु रूप धारण कर लेता है और वह एक फूल से दूसरे फूल पर जाने वाले भौंरें की तरह दूसरे शरीर में प्रवेश कर जाता है।

5. स्वर्गीय दृश्यों का अनुभव–भगवान के शुद्ध सत्वमय स्वरूप की धारणा करने पर सत्वगुण की अंश स्वरूपा सुर सुन्दरियाँ विमानों पर चढ़कर साधक के पास पहुँच जाती हैं तथा योगियों को भी देवताओं के दिहार स्थलों पर घूमने की शक्ति प्राप्त हो जाती है।

6. संकल्प सिद्धि रूप–जब योगी भगवान के सत्य संकल्प रूप में अपनी धारणा करता है उसे सत्य संकल्प रूप सिद्धि प्राप्त होती है। वह अपने मन में जो भी अच्छा अथवा वुरा संकल्प कर लेता है वह पूर्ण हो जाता है। देखा जाता है कि कभी-कभी योगी प्रसन्न होकर किसी को कोई वरदान या शाप देने की शक्ति रखते है क्योंकि मन में वे जो संकल्प कर लेते हैं, वह पूरा हो जाता है।

7. सर्वत्र आज्ञापालन रूप सिद्धि–जो साधक यागी भगवान को ईशित्व और वशित्व सिद्धियों स्वामी मानते हुए उनके इसी स्वरूप में अपने चित्त को धारण करता है, उसकी आज्ञा का सर्वत्र पालन होता है उसकी आज्ञा को कोई टाल नहीं सकता।

8. भूत-भविष्य एवं वर्तमान का ज्ञाता–जिस योगी का चित्त भगवान की धारणा करते-करते उनकी भक्ति के प्रभाव से पूर्ण शुद्ध हो गया है। वह सर्वज्ञ हो जाता है उसकी बुद्धि जन्म-मृत्यु आदि अदृष्टविषयों को जान लेती है तथा भूत-भविष्य और वर्तमान का वह पूर्ण ज्ञाता हो जाता है।

9. अग्नि, सूर्य, जल एवं विष आदि का प्रभाव नहीं होना–जैसे जल के द्वारा जल में रहने वाले प्राणियों का नाश नहीं होता वैसे ही जिस योगी ने अपना चित्त भगवान में लगाकर शिथिल कर दिया है उसके योगमय शरीर को अग्नि जल और विष आदि कोई भी नष्ट नहीं कर सकता है।

10 सर्वत्र विजयी होना–जो साधक भगवान के श्री वत्स आदि चिन्ह और शंख-गदा चक्र पट्म आदि आयुधों से विभूषित तथा ध्वज छत्र चँवर आदि से सम्पन्न भगवान के श्री विग्रह का ध्यान करता है उसकी सर्वत्र विजय होती है। इस प्रकार जो साधक भगवान में अपने चित्त की प्रवल धारणा करता है तथा अपने मन चित्त को भगवान के चतुर्भुज रूप में आयुधों से सम्पन्न रूप के ध्यान में लगाते हैं, उन्हें उपर्युक्त सभी सिद्धियाँ सहजता से प्राप्त हो जाती हैं।

बन्दऊँ बाल रूप सोइ रामू।

सब सिधि सुलभ जपत जिसुनामू॥

तुलसीदास जी महाराज ने तो भगवान के नाम जप से ही सम्पूर्ण सिद्धियों को प्राप्ति कहीं है अगर कोई साधक भगवान के बालक रूप का ध्यान कर भगवान के नामों का जय करें तो उसे सम्पूर्ण सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। जिसने भी अपने प्राण, मन और इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर ली है और जो संयमी है और भगवान के स्वरूप की धारणा करता है उसके लिए सभी सिद्धियाँ सुलभ हैं। श्रेष्ठ पुरुषों का कहना है कि जो साधक भक्ति योग अथवा ज्ञान योग का अभ्यास कर रहे हैं, जो भगवान के ध्यान में तदाकार हो रहे हैं उनके और भगवान के बीच सिद्धियाँ विघ्न रूप ही होती है, क्योंकि उनसे प्रभु प्राप्ति में विलम्ब हो जाता है। जैसे स्थूल पंचभूतों में बाहर भीतर सर्वत्र सूक्ष्म पंच महाभूत ही है और सूक्ष्म भूतों के अतिरिक्त स्थूल भूतों की कोई सत्ता नहीं, ठीक वैसे ही भगवान समस्त प्राणियों के भीतर द्रष्टा रूप से और वाहर दृश्य रूप से स्थित हैं। भगवान में बाहर भीतर का भी भेद नहीं है क्योंकि वे निरावरण एक अद्वितीय आत्मा (ब्रह्म) हैं।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि जब विषयी पुरुष भगवद कृपा और गुरुदेव के उद्‌बोधन द्वारा विषय पथ को त्याग साधना में तत्पर होता है तो उसकी साधना की पराकाष्ठा पर सिद्धियाँ प्रकट होती हैं, तब वही विषयी पुरुष जिसने साधक बनकर साधना शुरु की थी आज सिद्ध हो जाता है। यह अवस्था सामान्यतय सत्वगुण के विकास का ही फल है। अगर कोई धीर सिद्ध सिद्धियों के प्रलोभन से अपने को बचाकर भगवान का निष्काम भाव से भजन ध्यान करता है, उनमें अपने चित्त की प्रबल धारणा करता है तो उसे योग्य की अन्तिम सीमा सारूप सालोक्य सामीप्य तथा सायुज्य मुक्ति के रूप में भगवान प्रदान करते हैं? हमारे पूजनीय गुरुदेव बाबा श्री श्री 1008 श्री मनोहरदास जी महाराज ने उपर्युक्त सिद्धियों के प्रलोभन का त्यागकर स्वयं को ब्रह्मलीन कर दिया वे संसार के समस्त साधकों एवं भक्तों के प्रेरणा श्रोत स्वरुप हैं, मुझ पर कृपा करें।

॥ हरिः शरणम् ॥

हरिः ॐ तत्सत् हरिः ॐ तत्सत् हरिः ॐ तत्सत्॥

❑❑❑

अध्याय-8

ॐ श्री गुरुपरमात्मने नमः

बाबा मनोहरदास जीवन-दर्शन

त्रिगुणातीत महापुरुष

संसार में जितनी भी क्रियाएँ हो रही हैं उनके कर्ता गुण ही होते हैं। गुणों के कारण ही वह जगत परिवर्तनशील है। सम्पूर्ण क्रियाओं और परिवर्तनों में गुण ही कारण है और कोई कारण नहीं। ये तीनों गुण (सत, रज और तम) जिसमें प्रकाशित होते हैं वह (ब्रह्म) तत्व गुणों से परे है। गुणों से परे होने के कारण वह कभी गुणों से लिप्त नहीं होता है अर्थात् वह एक ऐसा विलक्षण तत्व है, जिस पर इन तीनों गुणों और इनकी क्रियाओं (परिवर्तन) का कोई प्रभाव नहीं होता।

इस विचार को हमारे गुरुदेव श्री बाबा मनोहरदास जी महाराज ने अपने विवेक (ज्ञान) द्वारा भली प्रकार समझ लिया था। उन्हें प्रकृति (तीनों गुणों की साम्यावस्था) और पुरुष का सम्यक् ज्ञान हो गया था। वे जीवनमुक्त महात्मा थे। उन्होंने अपने आपको गुणों से परे असम्बद्ध निर्लिप्त अनुभव कर लिया था। गुणों के साथ शुद्ध आत्मा का सम्बन्ध न कभी होता है न हुआ ही है। वे जानते थे कि आत्मा निर्विकारी, कूटस्थ है, जबकि गुण परिवर्तनीय है। आप में न कोई विकार है और न परिवर्तन। ऐसा अनुभव करके उन्होंने आत्म साक्षात्कार कर निज स्वरूप को प्राप्त कर लिया था।

श्रीमद् भगवत गीता में कहा गया है कि–

नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति।

गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मभ्दावं सोअधिगच्छति॥ (गी. 14/19)

अर्थात् जब विवेकी (विचार कुशल) पुरुष तीनों गुणों के सिवाय अन्य किसी को कर्ता नहीं देखता और अपने (आत्मा) को गुणों से परे अनुभव करता है, तब वह मेरे (भगवान) स्वरूप को प्राप्त हो जाता है।'' हुजूर ने जड़ चेतन की मृषा ग्रन्थि को समझ लिया था उन्होंने अपने सद्गुरुदेव से यह जानकर कि यह शरीर इस संसार की ही एक इकाई है तथा तीन गुण तो इसके मूल कारण हैं। आत्मा का इससे जरा सा भी सम्बन्ध नहीं है, अतः अपने को तीन गुणों का उन्होंने देह का उत्पन्न करने वाले इन तीनों गुणों का अतिभ्रमण करके अपने (आत्मा) को जन्म, मृत्यु और वृद्धावस्था–रूप दुःखों से अलग मानकर अपनी आत्मा की अमरता का अनुभव कर लिया था।

माया के ही ये तीन गुण हैं, जीव को विभिन्न विषयों के प्रलोभन देकर यह उसे उसके मूल (अविनाशी) स्वरूप से अलग कर देती है कबीर के शब्दों में–

माया महा ठगिनी हम जानी।

तिरगुन फाँसि लिए कर डोलै,

बोलै माधुरीबानी॥

इस प्रकार तीन गुणों के मजबूत बन्धन में इस जीव को जो मूलतः–

ईश्वर अंस जीव अविनासी।

चेतन अमल सहज सुख रासी॥

है इसने बाँध दिया है। लेकिन जिन महापुरुषों को इसका विवेक हो जाता है इसके बन्धन को जो भ्रम मूल है, झूठा है तोड़कर मुक्त हो जाते हैं। बाबा साहब का देह से सम्बन्ध नहीं था। वे सच्चे अर्थों में विदेह थे। संसार की दृष्टि में वे ही दिखाई देते थे। देह से सम्बन्ध के कारण ही मनुष्य अपने को जन्मने और मरने वाला मानता है। देह के सम्बन्ध के कारण ही उसे अनेक प्रकार के दुःखों का भी अनुभव करना पड़ता है। सम्पूर्ण दुःखों में सबसे बड़ा दुःख है मृत्यु का दुःख। सभी जी स्वरूप से अमर ही हैं लेकिन मनुष्य इन्द्रियों के भोगों में लिप्त हो जाने एवं भोगों का संग्रह करते जाने से अविवेक के कारण उसकी अमरता को भूल गया है।

जो भी साधक अपने गुरुदेव के आदेशानुसार साधना पथ पर अग्रसर होता है, उसे वे क्षेत्र एवं क्षेत्रज्ञ बाबा साहब अक्सर कहा करते थे–

आप भुलानों आप में बंध्यो आप में आप।

जो तू खोजत फिरै बावरे, सो तू आपम् आप॥

शरीर के साथ अपनी एकता मानने से ही जीव इसमें बंध गया इसे कोई बांधता नहीं, यह स्वयं ही अपने को बँधा हुआ मान लेता है और अपने आप में ही भूला हुआ संसार की 84 लाख योनियों के चक्कर लगाता फिरता है, लेकिन जब इस तत्व का बोध होता है तो वह अपने आप में ही उसे पालता है।

हुजूर साहब ने यह जानकर कि यह शरीर और सारा संसार गुणों के संग से ही उत्पन्न हुआ है, आत्मा का इस संसार और शरीर से कोई सम्बन्ध नहीं, गुणातीत अवस्था को प्राप्त कर लिया है। उन्होंने मृत्यु से पूर्व ही अपने को गुणातीत अनुभव करके जरा, व्याधि, मृत्यु आदि समस्त दुःखों से छुटकारा प्राप्त कर लिया था। उनके अन्दर गीतोक्त गुणातीत पुरुष के समस्त लक्षण स्पष्ट दिखाई देते थे–

उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते।

गुणा वर्तन्त इत्येव योऽवतिष्ठति नेङ्गते॥ [गी. 14/23]

अर्थात–जो उदासीन की तरह स्थित है और जो गुणों के द्वारा विचलित नहीं

किया जा सकता वह गुण ही (गुणों में) वरत रहे है–इस भाव से जो अपने स्वरूप में स्थित रहता है और स्वयं कोई भी चेष्टा नहीं करता वह गुणातीत पुरुष होता है।

जिन भाग्यशाली सज्जनों ने गुरुदेव के दर्शन उनके जीवन काल में किये हैं और अपने संस्मरणों में उनके स्वभाव का वर्णन करते हैं। उसे सबसे उनके त्रिगुणातीत स्वरूप का ज्ञान होता है। उनके अनुसार बाबा साहव हमेशा समता में स्थित रहते थे। उन्हें कभी न दुःखी देखा और न कभी सुखी उनके लिए ये दोनों अवस्थाएँ ही मिथ्या धारणा पर आधारित थी। उनका न कोई प्रिय था न अप्रिय सभी से वे समान भाव रखते थे। मान-अपमान, शत्रु-मित्र तथा निन्दा-स्तुति में उनकी भक्ति वृत्तियाँ सम रहती थीं।

गुणातीत पुरुष के लक्षणों को गीता में इस प्रकार कहा है–

समदुःखसुख स्वस्थः समलोष्टाश्मकान्चनः।
तुल्य प्रिया प्रियो धीरस्तुल्य निन्दात्मसंस्तुतिः॥
मानापमानयोस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः।
सर्वारम्भ परित्यागी गुणातीतः स उच्यते॥ [गी. 14/24-25/1]

अर्थात जो धीर मनुष्य सुख-दुःख में सम तथा अपने स्वरूप में स्थित रहता है। जो मिट्टी के ढेले पत्थर और सोने में समभाव रखता है, जो प्रिय-अप्रिय में तथा अपनी निन्दा स्तुति में सम रहता है, जो मान-अपमान में तथा मित्र-शत्रु के पक्ष में सम रहता है, जो सम्पूर्ण कर्मों के आरम्भ का त्यागी है, वह मनुष्य गुणातीत कहा जाता है।''

उल्लेखनीय है कि गुरुदेव के स्वाध्याय का सर्वप्रिय ग्रन्थ श्रीमद्भगवद् गीता ही था। अगर मैं कहूं कि वे स्वयं जो थे, उनका दर्शन जो था वह सब गीता के अध्ययन मनन एवं निर्दिध्यासन का ही परिणाम था। गीता के ज्ञान को उन्होंने अपने अंतःकरण नें स्थिर कर लिया था। उनकी साधना गीता ज्ञान के प्रकाश में ही हुई और अन्त में उन्हें आत्म ज्ञान का प्रकाश हुआ।

उपर्युक्त श्लोकों में वर्णित गुणातीत पुरुष के लक्षणों को पढ़कर हमें लगता है कि यह सांगोपांग गुरुदेव में विद्यमान थे। अपने एक संस्मरण में बाबा के समकालीन एक सज्जन ने मुझे वताया कि एक बार एक व्यक्ति ने बाबा के दो लट्ठ मारे, जिनसे बाबा के सिर में खून निकल कर सारा शरीर लहूलुहान हो गया, लेकिन आपने कोई प्रतिक्रिया नहीं की, उनके सभी कपड़े ऊपर से नीचे तक खून से लथपथ हो गए। यह आपकी गुणातीत अवस्था का ही प्रभाव है। वे न अपमान से व्यथित होते न मान से हर्षित, क्योंकि उनकी दृष्टि में ये दोनों ही शरीर तथा मान-अपमान ये आठ स्थिति वतलाई हैं। इन आठों में सामान्य मनुष्य के हृदय में विषमता का भाव जागृत होता है। यहाँ तक कि जो साधक कोटि का पुरुष होता है वह भी इन आठ स्थलों पर कभी-कभी विषमता को प्राप्त हो जाता है।

लेकिन जो आत्मवेत्ता परम ज्ञानी सिद्ध पुरुष होते हैं, उन्हें भूलकर भी इन स्थलों में विषमता का भाव नहीं होता। गुणातीत पुरुष को इन आठों स्थलों में स्वतः स्वाभाविक समता होती है। योगी का परम लक्षण समता ही है गीता प्रमुख रूप से समता पर ही जोर देकर कहती है कि–

योगस्थः कुरुकर्माणि संऽगं त्यक्त्वा धनंजय।

सिद्धयसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते॥ [गी. 2/48]

हे धनंजय! तू आसक्ति का त्याग करके सिद्धि-असिद्धि में सम होकर योग में स्थित हुआ कर्मों को कर, क्योंकि समत्व ही योग कहा जाता है (समत्वं योग उच्यते)

इस प्रकार हमारे पूजनीय श्री श्री 1008 श्री बाबा मनोहरदास जी महाराज ने अपने अन्तःकरण तक विषमता को सदा-सदा के लिए निकालकर समता धारण की थी और दुःख-सुख, प्रिय-अप्रिय, मान-अपमान तथा निन्दा-स्तुति आदि में वे हमेशा सम देखे गये। गुणातीत पुरुष के अन्तःकरण में जो स्वतः सिद्ध निर्विकारता होतो है वह उसकी स्वाभाविक स्थिति होती है। उनके जीवन में भी साधारण मानवों की तरह अनुकूल तथा प्रतिकूल परिस्थितियाँ आती हैं लेकिन उन परिस्थितियों के आने-जाने का उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है, उनकी निर्विकारता समता ज्यों की त्यों अटल रहती हैं।

गुण तथा उनकी वृत्तियों का संक्षिप्त परिचय

सामान्य पाठकों एवं साधकों की जानकारी हेतु शास्त्रों में वर्णित गुण एवं उनके द्वारा चित्त की वृत्तियों में जो परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है, उसकी जानकारी यहाँ संक्षेप में दी जाती है। विषयी साधक एवं सिद्धि के चित्त की वृत्तियों में जो भेद देखने को मिलता है उसका मूल कारण सत्व, रज एवं तम गुणों की प्रधानता ही है। इन्हीं के कारण मनुष्यों के तीन वर्ग बन गए हैं। गुणों के प्रभाव के कारण उनके न्यारे-न्यारे स्वभाव होते हैं।

1. **सत्वगुण की वृत्तियाँ हैं**–शम (मन का निग्रह), दम (इन्द्रिय निग्रह) तितिक्षा अर्थात् सहिष्णुता विवेक, तप, सत्य, दया, स्मृति, संतोष, त्याग, विषयों के प्रति अनिच्छा, श्रद्धा, लज्जा (पाप करने में स्वाभाविक संकोच) आत्मरति, दान, विनय और सरलता आदि।

2. **रजोगुण की प्रमुख वृत्तियाँ**–इच्छा, प्रयत्न, घमण्ड, तृष्णा (असंतोष), ऐंठ (अकड़) देवताओं से धन आदि की याचना करना, भेद, बुद्धि, विषय भोग युद्ध आदि के लिए मदपूर्ण उत्साह अपने यश में प्रेम हास्य पराक्रम और हठपूर्वक उद्योग करना।

3. **तमोगुणी वृत्तियाँ**–क्रोध (असहिष्णुता) लोभ मिथ्या भाषण (झूठ वोलना), हिंसा याचना, पाखण्ड, श्रम, कलह, शोक, मोह, विषाद, दीनता, निद्रा, आशा. भय

तथा अकर्मण्यता आदि उपर्युक्त वृत्तियाँ न्यारे-न्यारे गुणों का परिणाम हैं–लेकिन मानव के चित्त पर कभी-कभी तीनों गुणों के मेल से जो वृत्तियाँ उभरती हैं उनमें मुख्यतः अर्हता और ममता हैं यह दोनों वृत्तियाँ तीनों गुणों के मेल से ही उत्पन्न होती हैं। जब मनुष्य धर्म, अर्थ तथा काम में संलग्न होता है तब सत्य गुण से श्रद्धा (धर्म) रजोगुण से रति (काम) तथा तमोगुण से धन (अर्थ) की प्राप्ति होती है। जिस समय मनुष्य सकाम कर्म गृहस्थाश्रम और स्वधर्माचरण में अधिक प्रीति रखता है उस समय उसमें इन तीनों गुणों का ही मिश्रण होता है। मनुष्य की पहचान उसकी वृत्तियों से ही होती है। अगर मानसिक शान्ति है तथा इन्द्रियों का निग्रह किया हुआ है तो ऐसा पुरुष सतोगुणी श्रेणी में आता है। इसके विपरीत विषयों की कामना एवं अशान्ति से रजोगुणी तथा क्रोध, लोभ एवं हिंसक वृत्तियों से तमोगुणी पुरुष की पहचान होती है। सत्व, रज तथा तम इन तीनों गुणों का कारण जीव का चित्त ही हैं। इन्हीं गुणों के द्वारा जीव शरीर अथवा धन आदि में आसक्त होकर बन्धन में पड़ जाता है। वे इन तीनों गुणों की जननी प्रकृति है, इनके मजबूत बन्धन से वह अविनाशी जीवात्मा को बन्धन करती है–

ईश्वर असजीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुख रासी।

सो माया बस भयउ गोसाईं। बँध्यो कीर मरकट की नाईं॥

इस प्रकार चेतन अमल, और सहज सुख की राशि इस जीव को माया तीन गुणों के मजवूत लेकिन (मिथ्या) बन्धन से दृढ़ता से बाँध देती है। गीता में भी भगवान ने इन तीनों गुणों को बन्धनकारी कहा है।

सत्वरजस्तय इति गुणाः प्रकृति सम्भवाः।

निबन्धन्ति महाबाहो देहे देहिन मव्ययम्॥ गी. 14/5/1

अर्थात हे महाबाहो! प्रकृति से उत्पन्न होने वाले सत्व रज और तम ये तीनों गुण अविनाशी देही को देह में बाँध देते हैं। जीव का यह अविनाशी स्वरूप वास्तव में कभी गुणों से नहीं बंधता परन्तु जब वहीं इस दिनाशी देह को में (अहंता), मेरा (ममता) और मेरे लिए मान लेता है तब वह अपनी ही (मिथ्या) मान्यता के कारण गुणों से अपने आपको बँधा हुआ अनुभव करने लगता है, फिर उसको निज स्वरूप की विस्मृति हो जाती है। देह अभिमान के कारण गुणों के द्वारा देह में बँध जाने से वह तीनों गुणों से परे अपने (त्रिगुणातीत) स्वरूप को भूल जाता है। सत्व गुण प्रकाशक निर्मल और शान्त होता है, जिस समय वह रजोगुण और तमोगुण को दबा कर बढ़ता है उस समय यह जीव (पुरुष) सुख धर्म और ज्ञान सम्पन्न हो जाता है उसके हृदय में परम शान्ति होती है। रामचरित मानस में सत्व गुण के प्रभाव को "सतयुग" कहा है–सुद्ध सत्व समता विज्ञाना। कृत प्रभाव प्रसन्न मन जाना॥ अर्थात जब हृदय में समता ज्ञान वैराग्य की वृत्तियाँ उत्पन्न होकर शान्ति का अनुभव हो तो समझिए यह सत्व गुण का प्रभाव है। सत्व गुण की वृद्धि से जीव अनेकों सिद्धियों को प्राप्त कर लेता है।

इसके विपरीत रजोगुण भेद वृद्धि (विषमता) का कारण है। इससे आसक्ति एवं प्रवृत्ति (अनेक कार्यों में प्रवृत होना) में वृद्धि होकर मनुष्य दुःख, कर्म, शक्ति, यश तथा लक्ष्मी से सम्पन्न होता है। तमोगुण जब रजोगुण तथ सतोगुण को दबाकर वृद्धि को प्राप्त होता है तो अज्ञान, आलस्य और मूढ़ता (बुद्धि की जड़ता) में वृद्धि होकर मनुष्य अनेक प्रकार की आज्ञारूपी फाँसियों पर लटकता है तथा झोक मोह में पड़कर हिंसा पर उतारु हो जाता है अथवा निद्रा-आलस्य में होकर पड़ा रहता है। प्रत्येक जीव अपने शरीर में उत्पन्न होने वाले इन तीनों गुणों का साक्षी होता है कब कौन-सा गुण वृद्धि पर है उसे उसकी ठीक-ठीक ज्ञान की भी रहता है। विवेकी पुरुष हैं वे ऐसा जानते है कि ये गुण प्रवृत्ति के विकार है देह के अंग हैं देही (जीवात्मा) के नहीं।''

अब चित्त प्रसन्न है, इन्द्रियाँ शान्त हों, भय का अभाव हो, मन में आसक्ति न हो तत्व सत्व गुण की वृद्धि होती है साधना के लिए यह बहुत सहायक होता है। सत्वगुण ईश्वर प्राप्ति का सोपान है। लेकिन इससे प्राप्त आनन्द में भी आसक्ति जीव को परमेश्वर के मिलने में वाघा उत्पन्न कर देती है। अतः चतुर साधक अपनी बुद्धि को इस आनन्द के भोग से रोकता है और ऐसा करके वह त्रिगुणातीत अवस्था में पहुँच जाता है। साधक के चित्त में जब शुद्ध सत्व गुण का संचार हो जाता है और रजोगुण तमोगुण का प्रायः अभाव हो जाता है तो अनेक प्रकार की सिद्धियों का प्रकटीकरण हो जाता है। इस स्थिति का सामना कोई-कोई धीर वुद्धि ही कर पाता है। अधिकांश का अपनी स्थिति से पतन हो कर पुनः रजोगुण, तमोगुण प्रवृत्तियों की वृद्धि हो जाती है, अतः धीर वुद्धि पुरुष उनकी ओर नहीं ध्यान देता–

होई बुद्धि जौं परम सयानी।

तिन्हतन चितव न अनहित जानी॥

जब काम करते-करते जीव की बुद्धि चंचल, ज्ञानेन्द्रियाँ असंतुष्ट कर्मेन्द्रियाँ विकार युक्त, मन भ्रान्त, दुद्धि अशांत एवं शरीर अस्वस्थ हो जाये, तब समझना चाहिये कि रजोगुण बढ़ा है। और जब चित्त ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा शब्दादि विषयों को ठीक-ठीक समझने में असमर्थ हो जाये और खिन्न होकर लीन (जड़तायुक्त) होने लगे, मन सूना-सूना सा हो जाये तथा अज्ञान विषाद की वृद्धि हो तो ऐसा जानना चाहिए कि तमोगुण वृद्धि पर है। सत्वगुण की वृद्धि पर देवताओं का, रजोगुण की वृद्धि पर, असुरों का तया तमोगुण की वृद्धि से राक्षसों का बल बढ़ जाता है। सत्व गुण से जागृत, रजोगुण से स्वप्न अवस्था एवं तमोगुण से सुषुप्ति अवस्था होती है। तुरिय इन तीनों में एक सा व्याप्त होता है वही शुद्ध और एक रस आत्मा है। वेदाभ्यासी सत्वगुण सत्पन्न ब्राह्मण (जीवात्मा) उत्तरोत्तर ऊपर के लोकों को जाता है, तमोगुण की वृद्धि पर वृक्षादि तथा तमोगुणी सरीसृपादि योनियां मिलती हैं तथा रजोगुण की वृद्धि पर मरने वाले जीव को मनुष्य शरीर मिलता है। लेकिन जो पुरुष इन तीनों गुणों का अतिक्रमण कर जाते हैं उन्हें परमात्मा की प्राप्ति होती है। वे

ब्रह्मलीन हो जाते हैं हमारे हुजूर बाबा मनोहरदास जी महाराज ने इसी देह में इन तीनों गुणों पर विजय प्राप्त की थी तथा वे इस जीवन में ही देह तथा उसके कारण तीनों गुणों से मुक्ति पाकर जीवन मुक्त हो गए। वह मुक्त होने के लिए कहा करते थे।

मोक्ष मुक्ति जो चहत हो, तजो कामना काम।
मन इच्छा को मेटिकर भजो निरंजन नाम॥
भजो निरंजन नाम, देह अभ्यास मिटाओ।
पंचन का तज स्वाद, आप में आप समाओ॥
जब छूटै झूंठी देह जैसे के तैसे रहिया।
चरणदास गुरुदेव ज्ञान यह हम से कहिया॥

अर्थात अगर मुक्ति चाहते हो तो अपने हृदय से समस्त कामनाओं और वासनाओं से छुट्टी पाती, अपने मन को समस्त इच्छाओं को त्याग कर (निरंजन) त्रिगुणातीत शुद्ध ब्रह्म के नाम का अखण्ड जप करो। मैं देह हूँ, या यह शरीर मेरा है, ऐसी धारणा से मुक्त हो जाओ। पाँचों इन्द्रियों के भोगों की आशक्ति को त्याग कर अपने निज स्वरूप में स्थित हो जाओ। जब प्रारब्ध बस (कर्म चूक जाने) पर यह मिथ्या देह समाप्त होने लगे तो अपने स्वरूप से विचलित न होकर जैसे के तैसे रहो। याद रखो तुम देह नहीं, देह तुम्हारी नहीं प्रकृति का अंश है, तुम देह में नहीं स्वयं (आपे में स्थित हो) में स्थित हो ऐसी आत्मनिष्ठ व्रह्मनिष्ठा या भगवद्निष्ठा में ही स्थित रहो।

इस प्रकार गुरुदेव में तीनों गुणों के कार्य रूप इस देह-गेह और समस्त जगत से अपनी आसक्ति हटाकर सत्व गुण के सेवन से रजो एवं तमो गुण को दबा दिया अपने मन एवं इन्द्रियों के व्यापार पर प्रतिबन्ध लगा दिया तथा अखण प्रणव जप (ॐ सोहं, शिवोहं सोहं) द्वारा आसक्ति को पूर्ण समाप्त कर योग युक्ति से चित्त की वृत्तियों को पूर्ण रूपेण शान्त करके निर्पेक्षता के द्वारा सत्व गुण पर भी विजय प्राप्त कर ली। इस प्रकार गुणों से मुक्त होकर उन्होंने जीव भाव को छोड़कर आत्म भाव (शिव रूप) में स्थित हो गए। वे लिंग शरीर रूप अपनी उपाधि जीवन्त से तथा अन्तःकरण में उदय होने वाली सत्वादि गुणों की वृत्तियों से मुक्त होकर अखण्ड ब्रह्मानुभूति कर एकत्व में स्थित हो गए।

दौड़ दौड़ तू दौड़ले, अब तक दौड़े दौड़ ।
जा कारन तू दौड़ता, वस्तु ठौर की ठौर॥

ॐ गुरु माता-पिता, ॐ जमी असमान।
ॐ गुरु परमात्मा, सो करो ॐ का ध्यान॥
हरिः ॐ तत्सत्। हरिः ॐ तत्सत्,॥ हरिः ॐ तत्सत्॥।

❑❑❑

अध्याय-9

ॐ श्री गुरु परमात्मने नमः॥

बाबा मनोहरदास जीवन-दर्शन

याद है तो आबाद है, भूल गया तो बर्बाद है

मोह निद्रा में सोये हुए संसारी जीवों को उस परमात्मा की याद दिलाने वाले ये वचन हुजूर महाराज बाबा श्री मनोहरदास जी के है। जैसे आप स्वयं उस परब्रह्म परमात्मा में अपने मन और बुद्धि को सदैव गंगा-प्रवाहित लगाए रहते थे, ठीक उसी का वह संसार को भी उपदेश देते थे कि हमें सब कुछ छोड़कर उस ईश्वर को याद रखना चाहिये जो सत, चित और आनन्द धन है। जव हम उस सत्य स्वरूप, शिव स्वरूप और सुन्दरता के धाम भगवान को याद करते हैं, उसका स्मरण करते हैं, तो तत्काल परम शान्ति का अनुभव होने लगता है। बाबा महाराज सद्य अर्थो में ''सद्गुरु'' थे उन्होंने भूले-भटके जीवों को आनन्द का मार्ग दिखलाया। उन्हें सार वस्तु का उपदेश किया भगवान का भजन ही सार है और सव बेकारी है। संसार में एक ईश्वर ही परम सत्य हैं हमें उसे सदैव स्मरण (याद) रखना चाहिए। हमें अपने मन को तथा बुद्धि को उस ईश्वर की याद उसके भजन उसके ध्यान में लगा देना चाहिए। यही सारे धर्म ग्रन्थों का सार सारे दर्शनों और साधना पद्धतियों का सार है। हमारे गुरुदेव ने हमें अपने चरित्र द्वारा यह शिक्षा दी कि, केवल हरि का नाम ही मधुर से मधुर, मंगलमय से भी मंगलमयी और पवित्र से भी पवित्र हैं। ब्रह्मा से लेकर एक साधारण चींटी तक सारा संसार मायामय, अनित्य, सुख रहित एवं क्षण भंगुर है।

''सत्यं सत्यं पुनः सत्यंम्।

हरेर्नामैव केवलम्॥

अर्थात् केवल ''हरि'' का नाम ही तीनों कालों में परम सत्य है हमें उसे कभी भी नहीं भूलना चाहिये। हमें सदैव उसको याद रखना चाहिए। जब भी जीव ईश्वर को भूल गया तभी वह अपने आप को भी भूल गया, भगवान की याद के साथ-साथ ही उसे अपने आपका भी भान हो जाता है। जीवों पर सबसे बड़ी विपत्ति तब आती है जब वह ईश्वर के सुमिरन भजन को भूल जाता है। यही उसके दुःखों का मूल कारण भी होता है क्योंकि सत्पुरुषों के मतानुसार जब-जव जीव सांसारिक भोगों में आसक्त होकर ईश्वर को भूल जाता है तभी उसे अपने स्वयं के स्वरूप ''ईश्वर अंस जीव अविनासी'' की विस्मृति भी हो जाती है और वह अनेक प्रकार के क्लेशों से घिर जाता है। हुजूर अपनी अटपटी भाषा में इसे बर्बादी कहते हैं ''भूल गया तो बर्बाद है'' अर्थात ईश्वर को भूलना ही सबसे बड़ी बर्बादी है। इसके कारण हमें अनेक प्रकार के दारुण क्लेशों का सामना करना पड़ता है।

हमारे गुरुदेय बाबा मनोहरदास जी महाराज ने संसार के साधकों को साधना का महत्त्वपूर्ण सूत्र बतलाते हुए यह बात सीधे-साधे ढ़ंग से अभिव्यक्त की थी ईश्वर को याद रखना ही श्रेयकर है जब तक हम भगवान में अपने मन और बुद्धि को लगाए रखेंगे तब तक जीव परम सुख का अनुभव करता रहेगा उससे सम्बन्ध विच्छेद होते ही यह आनन्द सिन्धु का निवासी जीव उसी प्रकार विविध प्रकार के कष्टों का अनुभव करके तड़पता रहता है जैसे किसी मछली को उसके प्राणाधार जल से विलग करने पर वह तड़प-तड़प कर अपने प्राणों को त्याग देती है। सार बात यह है कि गुरुदेव ने भगवान के भजन-सुमिरन को सुख का, तथा उसके विस्मरण को दुःख का कारण माना था। रामचरित्र मानस में श्री हनुमान जी जीव की विपत्तियों का मूल भी भगवान के विस्मरण को डी बतलाते हैं–

कह हनुमंत विपति प्रभु सोई।

जब तब सुमिरन भजन न होई॥

अतः हमारे कल्याणकारी गुरुदेव हमें हमेशा हरि नाम को याद रखने का सदोपदेश देते हुए कहा करते थे–

"याद रख। याद है तो आबाद है

भूल गया, तो बर्बाद है।"

शास्त्रों-पुराणों में सद्गुरु का लक्षण बतलाया गया है कि वही गुरु है जो केवल हरि नाम स्मरण करना सिखलाता हो–

सः गुरु स पिता चापि सा माता वान्धवोऽपि सः।

शिक्षयेच्चेत्सदा स्मन्तुं हरेनां मैव केवलम्॥

अर्थात जो सर्वदा केवल हरिनाम स्मरण करना ही सिखलाता है वही गुरु है, वही पिता है, वही माता है और बन्धु भी वही है।

इस अर्थ में हमारे गुरुदेव सच्चे सद्गुरु थे क्योंकि उन्होंने परमात्मा के भजन-ध्यान को ही अपने जीवन का एकमात्र ध्येय बनाया था। वे सदैव उस "अलख पुरुष मूर्ति के ध्यान में मग्न रहा करते थे। उन्होंने अपने मन और बुद्धि को ईश्वर में लगा दिया था। मन से भगवद् चिन्तन एवं बुद्धि में उसी परम तत्व, परमेश्वर का विचार किया करते थे। हम पूर्व में हुजूर की आध्यात्मिक साधना के बारे में निवेदन कर चुके हैं कि उनके स्वाध्याय का एकमात्र प्रमुख ग्रन्थ श्रीमद् भागवद्गीता थी। गीतोक्त मार्ग अपना कर उन्होंने परं सिद्धि प्राप्त की थी। भगवान ने गीता में अनेक स्थलों पर अर्जुन (जीव मात्र) को यह आदेश दिया है–

मध्येव मनः आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।

निवसिस्यसि मध्येव अत ऊर्ध्व न संशय॥ गी. 12/811

अर्थात, तू मेरे मन को लगा और मेरे में ही बुद्धि को लगा इसके बाद तू मेरे में ही निवास करेगा– इसमें संशय नहीं है।

इसका सीधा साधा तात्पर्य यह है कि जिसने अपने मन से सांसारिक संकल्प-विकल्पों को त्यागकर, एक हरि स्मरण में ही लगा दिया हो और बुद्धि को भी उस ईश्वर में सम्पूर्णता से जोड़ दिया हो, उसका निवास ईश्वर में ही होता है, वह स्वयं भगवद् स्वरूप हो जाता है। हमारे गुरुदेव ब्रह्म स्वरूप महात्मा थे क्योंकि वे हमेशा से सोते जागते सभी अवस्थाओं में ईश्वर को अपने अन्दर और आपको ईश्वर में एक रस अनुभव करते थे।

तूँ तूँ करता तूँ भया,

मुझ में रही न हूँ।

वास्तविकता यह है कि जीव और ब्रह्म का नित्य योग है। जीव और ब्रह्म एक क्षण के लिए कभी अलग नहीं होते। भगवान के साथ अपना स्वतः सिद्ध नित्य सम्बन्ध है। लेकिन भगवान की माया "अविद्या" के कारण वह (जीव) इस नित्य सखा को भूल गया। वह नर अपने सखा नारायण को भूलकर इस संसार में भटक गया है। अब अहेतु की कृपा करने वाले उसके नित्यसखा, उसके स्वामी नारायण उसे इस विस्मरण का बोध कराते हैं, उसे इस नित्य योग का स्मरण कराते हैं तब यह जीव परमानंद के सागर अपने स्वामी आनन्द सिन्धु को पाकर कृतार्थ होता है। अतः हुजूर के वचन–"याद रख, याद है, तो आवाद है"। इस नित्य-योग की याद दिलाते हैं कि तू उससे अलग नहीं और तेरा मालिक भी तुझसे व्यारा नहीं तू ही उसको भूल गया है। अतः उसे याद कर उसका विस्मरण ही तेरे सारे दुःखों का कारण है, वह तो हमेशा तेरे अंग-संग है वह घट-घट का वासी है।

ज्यों तिल माहीं तेल है, ज्यों चकमक में आगि।

तेरा साई तुझ में, जागि सके तो जागि॥

बाबा साहब ने उस ब्रह्म से नित्य योग प्राप्त कर लिया था, उन्होंने अपने इष्ट ग्रन्थ श्रीमद् भगवद् गीता के अनुसार अपने मन और बुद्धि से इस जड़ संसार की ममता, आसक्ति और सुख भोग की इच्छा को सदैव के लिए निकाल फेंका था। मन को संसार के चिन्तन से हटाकर भगवान में लगा दिया तथा बुद्धि के द्वारा दृढ़ता से निश्चय कर लिया कि–

मैं केवल भगवान का ही हूँ और केवल (एकमात्र) भगवान ही मेरे हैं। इस प्रकार उन्होंने दृढ़ निश्चय करके इस संसार का चिन्तन और इसका विचार त्यागकर ईश्वर के नित्य सम्बन्ध को अनुभव कर लिया था। उन्होंने समस्त साधकों को अपने तत्व ज्ञान का उपदेश देते हुए इस बात पर विशेष जोर दिया कि जब भी, जो भी हमेशा ईश्वर में अपना मन और अपनी बुद्धि को लगा देगा उसी क्षण उसे जो

अनुभव होगा वह मन और बुद्धि से परे की यस्तु होगी और उसे वह स्वयं ही अनुभव कर सकेगा उसका वर्णन मनवाणी से अकथनीय होगा। हमारे हुजूर इस संसार में संसारी प्राणियों के वीच रहकर भी उनसे व्यारे लोक के निवासी थे। उनका ''ज्ञानध्यान व्यारा था'' जिसे साधारण संसारी मानव क्या समझ सकते हैं। वे संसार में रहकर अनेक प्रकार की अटपटी, न समझ में आने वाली अनेक क्रियाओं में संलग्न रहते तो कभी शांत समुद्रवत निश्च्येष्ट भाव से स्थित रहते। उनके क्रिया व्यापार को देखकर लोग अपनी-अपनी भावनाओं के अनुसार उनके वारे में भिन्न-भिन्न विचार और भावना रखते थे। कोई उनको सिद्ध पुरुष कोई अघोरी, तो कुछ लोग उन्हें ''बावरा'' मानते थे लेकिन जिसने अपनी बुद्धि को और मन को ईश्वर को अर्पित कर दिया हो उसके बारे में साधारण लोग क्या अनुमान लगा सकते हैं जिसकी जैसी भावना वैसे ही दर्शन होते हैंः–

जिनकी रही भावना जैसी

प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी॥

के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने भाव के अनुसार आपको मानकार तथा जानकार वैसे ही भावनानुसार फल प्राप्त करता था। वे हमेशा ईश भजन-ध्यान में लगे रहते लेकिन उसका प्रदर्शन नहीं करते। कोई भाग्यवान साधक आपसे कोई साधना का रहस्य पूछता तो बड़े सीधी और सपाट शैली में आप उसका समाधान भी कर दिया करते। सामान्य संसारियों कर्मासक्त लोगों को एक ही बात कहा करते कि–

याद रख, याद है तो आबाद है।

भूल गया तो बर्बाद है॥

संसार कार्यों के साथ-साथ ईश्वर को भी याद रखो। अगर ईश्वर स्मरण करते हुए तुम संसार में रहोगे तो सब प्रकार की सम्पत्तियाँ प्राप्त कर आनन्दपूर्वक ईश्वर को भी प्राप्त कर लोगे और संसारी कार्यों, संसार के विषय-भोगों के संग्रह और भोगों में आसक्त होकर, उस ईश्वर को भूल गए तो समझो बर्बादी आपके सन्मुख खड़ी है। अतः वे गीता के अनुसार सव समय सोते-जागते, खेलते-खाते ईश्वर को याद रखने की बात कहा करते। ईश्वर प्राप्ति का सहज उपाय जो स्वयं उन्होंने अपनाया और जिसका दूसरों को भी अपनी साधना द्वारा उपदेश दिया वह था कि सव समय ईश्वर को स्मरण करना तथा संसारी कार्यों को भी करते रहना।

भगवान श्री कृष्ण इस रहस्य को अपने परमसखा अर्जुन को बतलाते हुए कहते हैं–

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युद्ध च।

मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंसयम्॥ (8-7 श्री मद.)

तू सब समय में मेरा स्मरण कर और युद्ध भी कर। मेरे में मन और बुद्धि अर्पित करने वाला तू निःसन्देह मेरे को ही प्राप्त होगा। यहाँ एक विशेष उल्लेखनीय साधन का रहस्य यह है कि भगवान ''सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर'' पद से यह रहस्योद्घाटन कर रहे हैं कि मेरी याद में एक क्षण का भी विराम नहीं होना चाहिए। साधक से सिद्ध बनने में बस एक क्षण का विलम्ब ही बाधक होता है। अतः साधना का परम रहस्य बाबा ने यह बतालाय कि हम संसार के कर्त्तव्य-कर्मों के साथ-साथ हर सांस पर प्रभु का स्मरण करते चलें तो हमें ईश्वर की प्राप्ति में कोई विलम्ब नहीं, वह हमें हमेशा सहज प्राप्त है। आप कहते थे कि ईश्वर तो बहती हुई गंगाजी के सदृश्य है जब इच्छा हो उसमें गोता लगा सकते हैं। वहाँ वह हर घड़ी हर क्षण लाखों के उद्धारार्थ अखण्ड बह रही है। हे जीव! तू आलस्य प्रमाद को छोड़कर उसमें अपने हाथ-पग क्यों नहीं पखार लेता, यह शरीर हमेशा नहीं रहना, यह शीशे की भांति क्षण-भंगुर है, अतः जब तक यह शरीर हमारा साथ छोड़े, उससे पहले ही इसके द्वारा साधन भजन-स्मरण करके अपनी आत्मा को उस परमात्मा का अनुभव करा दे, अपनी पसन्द के एक छन्द के द्वारा वे कहा करते थे–

चल काशी, अविनाशी से मिला देऊँ तोय।

चौरासी का फन्दा तुरत टूट जायेगा॥

वहती गंगा हाथ पग क्यों न पखार लेत।

कांच कासा शीशा फटाफट फूट जायेगा॥

अतः इस नश्वर शरीर का भरोसा न रखते हुए हमें अपनी बुद्धि और मन को ईश्वर के स्मरण में लगा कर अपने और ईश्वर के बीच नित्य सम्बन्ध को अनुभव कर लेना ही इस मनुष्य जीवन का परम लक्ष्य होना चाहिए।

बाबा महाराज ने ईश्वर को याद करने एवं उसका भजन-ध्यान करने के लिए कुछ गोपनीय युक्तियाँ अपने शिष्यों को समझायी थीं। आप कहा करते थे कि योग की युक्तियों को जितना छुपा के रखा जावेगा उतना ही प्रभावोत्पादक होगी। ईश्वर के निमित्त किया जाने वाला हर कार्य जप, तप तथा दान गुप्त रूप से करना चाहिये। अपने अतिरिक्त दूसरे को यह नहीं मालूम होना चाहिए कि हम ईश्वर के निमित्त क्या क्रिया करते हैं। संक्षेप में हुजूर द्वारा निर्देशित जप ध्यान से सम्बन्धी युक्तियों को निम्न बिन्दुओं के माध्यम से जाना जा सकता है–

भजन ध्यान की गोपनीयता

हुजूर ने अपनी साधना के माध्यम से हमें यह रहस्य समझाया है कि हमें ईश्वर के भजन-ध्यान का प्रदर्शन नहीं करना चाहिए। संसार को दिखलाने से उसके प्रभाव में कमी आ जाती है। दूसरी बात यह है कि भजन-ध्यान अन्तर की क्रियाएँ हैं मन और बुद्धि के विषय हैं। अतः हमें अपने मन बुद्धि को परमात्मा के

भजन-ध्यान में लगाना चाहिए यही सबसे उत्तम साधन है–

दोहा. बाहर क्या दिखलाइए, अन्दर जपिए नाम।
कहा काज संसार के, तुझे धनी से काम॥

अतः ईश्वर के स्मरण में किसी प्रकार का दिखावा और प्रदर्शन ठीक नहीं। बाबा हुजूर ने अपने साधन भजन को कभी भी सार्वजनिक प्रदर्शन का विषय नहीं बनाया। उनका ईष्ट और उसकी साधनापूर्ण रूपेण गुप्त ही रही। उनके गुरु का ज्ञान न्यारा था। एक राजा था। उसको छोड़ उसका सारा परिवार हरिभक्ति में रंगा हुआ था। रानी को इस बात का बड़ा दुःख रहता था कि हमारे महाराज भगवान का कभी नाम नहीं लेते और ना कभी कथा कीर्तन आदि में भाग लेते हैं। रानी दिन भर भगवद् भक्ति हेतु कुछ न कुछ किया करती थी। कभी जप कभी व्रत उनका अधिकांश समय आध्यात्मिक क्रियाओं में ही व्यतीत होता। एक दिन महाराज सोये हुए थे उस समय उनके मुख से ''गोविन्द माधव हरे मुरारे हे नाथ नारायण वासुदेवा'' आदि भगवान के नामों को निकलते हुए महारानी ने सुना तो वह परम प्रसन्न हुई। प्रातः महाराज ने पूछा कि आज किस खुशी में यह उत्सव मनाया जा रहा है, तो महारानी ने बड़ी प्रसन्नता से कहा कि आज रात्रि को नींद की अचेत अवस्था में भी आपके मुख से भगवान के नाम निकल रहे थे। सो उसी खुशी में यह उत्सव मनाया जा रहा है। राजा को बड़ा दुःख लगा उसने कहा कि मुख से नाम ही निकल गया तब जी कर क्या करना है। ऐसा कहकर राजा ने अपने प्राण त्याग दिये। क्योंकि वह गुप्त भक्त था। भक्ति का प्रदर्शन उसकी साधना का उद्देश्य न था। अतः हुजूर ने हमें यह गुप्त रहस्य बतलाया कि क्या भजन करते हो, क्या तप करते हो, क्या दान देते हो, इन सब बातों का दूसरे व्यक्ति को पता नहीं चलना चाहिए यही गुरु का ज्ञान है। भगवान तो बिना प्रदर्शन के भी सब कुछ जानते हैं।

प्रभु जानत सब बिनहिं जनाएँ।
कहहु कवनि सिधि लोक रिझाएँ॥
जोग जुगुति तप मंत्र प्रभाऊँ।
फलहिं तवहिं जब करिअ दुराऊँ॥

अतः हुजूर महाराज साधना मे प्रदर्शन को ठीक नहीं मानते थे क्योंकि साधना जप तप के प्रदर्शन से लोक प्रसिद्धि होती है। संसार में मान बढ़ता है और साधक के कर्तापन का अभिमान बढ़कर उसका पतन हो जाता है। अतः भगवदार्थ कर्मों में पूर्ण गोपनीयता होनी चाहिए।

भजन-ध्यान में तल्लीनता एवं तदाकारता

हुजूर महाराज बाबा मनोहरदास जी महाराज ने ध्यान के रहस्य को अपनी साधना पद्धति से अपने शिष्यों एवं अनुयायियों को समझाया। वह स्वयं अपने इष्ट

के ध्यान में मग्न रहा करते। उन्हें बाह्य जगत का बिल्कुल बोध नहीं रहता था। उन्होंने अन्तर्मुखी होकर अपने आपको अपने मन बुद्धि को परमब्रह्म में लीन कर दिया था। वह हमेशा सहज समाधि अवस्था में रहा करते थे। उन्होंने अपने आपको उस ईश्वर में लीनकर तदाकारता प्राप्त कर ली थी। वे स्वयं ब्रह्मस्वरूप बन गये थे। धारणा, ध्यान और समाधि के लिए यह आवश्यक है कि हम अपने मन और इन्द्रियों को क्रिया व्यापार को शान्त कर लें, जिसकी इन्द्रियाँ और मन अभी शान्त होकर अन्तर्मुखी नहीं हुई है ऐसा व्यक्ति न ध्यान करने का अधिकारी होता है और समाधि का तो प्रश्न ही नहीं। हमारे हुजूर ने सम-दम, त्याग एवं तितिक्षा आदि षट सम्पत्ति पर अपना अधिकार किया हुआ था। अतः वे सहज समाधि अवस्था में रहा करते थे। पाठकों एवं साधकों के हितार्थ भजन एवं ध्यान के लिए पांतजलि योग दर्शन के आधार पर कुछ तथ्य निवेदन किये जाते हैं। उनके अनुसार चित्त की वृत्तियों का शान्त हो जाना ही योग है। जब तक मनुष्य के चित्त में चंचलता है तब तक उस तत्व की प्राप्ति दुर्लभ है।

"योगश्चित्त वृत्ति निरोधः। (प.यो.सू. 2)

इस सूत्र के अनुसार जिसने अपनी चित्त वृत्तियों को शान्त कर लिया है वही योगी है। अब मनुष्य अपने चित्त को किसी भी युक्ति से शान्त कर लेता है तो उसका परिणामः–

तदा द्रष्टु : स्वरूपे अवस्थानम्॥ (प.यो.सू. 2)

उस समय द्रष्टा की अपने स्वरूप में स्थिति हो जाती है अर्थात् वह कैवल्य अवस्था को प्राप्त कर लेता है। यहाँ विशेष उल्लेखनीय तथ्य यह है कि यद्यपि जीव (दृष्टा) अपने स्वरूप में ही स्थित रहता है। लेकिन अविद्यावश वह अपने को देही मानने के कारण उस देह के मन बुद्धि एवं चित्त की वृत्तियों को अपना ही स्वरूप मान लेती है। जब तक योग साधनों द्वारा चित्त की वृत्तियों का निरोध नहीं हो जाता तब तक दृष्टा (जीव) अपने चिन्त की वृत्तियों के अनुरूप ही अपना स्वरूप समझता रहता है। इसे अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान नहीं होता। अतः योग का मुख्य उद्देश्य चित्त की वृत्तियों पर प्रतिबन्ध लगा के, जीवन को स्वरूप स्थिति का बोध करके , सुखी एवं शान्त परब्रह्म की प्राप्ति करना। इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु मुनी श्री श्रेष्ठ पातंजलि ने अपने योग मार्ग के आठ अंग निर्धारित किये जिसका सांगोपांग अनुष्ठान करने पर चित्त निर्मल होकर ज्ञान का प्रकाश हो जाता है अर्थात् साधक (दृष्टा) को अपनी आत्मा का स्वरूप, बुद्धि, अहंकार और इंद्रियों से सर्वथा भिन्न दिखाई देने लगता है। पतंजलि के योग के आठ अंग ये हैं।

यम नियमासन प्राणायम प्रत्याहार धारण ध्यान समाधयो अष्टवडानि॥" (प. यो. 29)

अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार तथा धारणा, ध्यान तथा समाधि ये आठ अंग हैं इनका क्रम से अनुष्ठान करने पर चित्त के मल विक्षेप एवं

आवरण दोष शान्त होकर वह निर्मल हो जाता है। संक्षेप में इनका जानकारी इस प्रकार है।

1. पाँच यम–"**अंहिसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः**" **(यो. सू. 30)**

(i) अहिंसा–अर्थात् मनवाणी और कर्म से किसी को न सताना।

(ii) सत्य–यथार्थ, प्रिय एवं हितकारी वचन वोलना।

(iii) अस्तेय–छल, कपट के व्यवहार से दूसरे के स्वत्व को अपहरण न करना तथा सव प्रकार की चोरियों से बचना।

(iv) ब्रह्मचर्य–मन, वाणी और कर्म से सभी प्रकार के मैथुनों का त्याग एवं कामोद्दीपक दृश्यों, साहित्यों एवं अन्य साधनों का सर्वधा त्याग ब्रह्मचर्य है।

(v) अपरिग्रह–अपने स्वार्थ हेतु ममता पूर्वक धन सम्पत्ति और भोग सामग्री का संग्रह न करना।

2. नियम पाँच हैं–"**शौच संतोषतपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि नियमाः ॥**" **(प.यो.सू. 32)**

(i) शौच–शरीर की बाहरी एवं अन्तः करण की शुद्धि करना।

(ii) सन्तोष–प्रारब्धानुसार प्राप्त अनुकुल प्रतिकूल परिस्थितियों में संतुष्ट रहना तथा कामना का अभाव।

(iii) तप–स्वधर्म हेतु कष्ट सहना व्रतादि द्वारा मन एवं इंद्रियों के क्रिया व्यापार पर नियंत्रण करना।

(iv) स्वाध्याय–भगवान के पवित्र नामों का जप, सदग्रन्थों का नियमपूर्वक अध्ययन करना।

(v) ईश्वर प्राणिधान–ईश्वर को सच्चे हृदय से शरणागति इस प्रकार यम और नियम अष्टांग योग के दो प्रथम अंग हैं, जिनके द्वारा मनुष्य विषयी से साधक कोटि में आता है। अत तीसरा अंग है।

(3) आसन–"**स्थिर सुखमासनम्**" ॥ (प.यो.सू. 46)

स्थिर और सूखपूर्वक हम जिस प्रकार अधिक समय बैठ सकें वही आसन है लेकिन शरीर गर्दन और रीढ़ स्तम्भ ये तीनों सीधे होने चाहिये ऐसा गीता अध्याय 6 में वर्णित है। मन के स्थिर लगाने हेतु आसन का स्थिर एवं सुखदाई होना आवश्यक होता है।

(4) प्रणायाम–"श्वास प्रश्वास योर्गति विच्छेदः प्राणायामः" (प.यो.सू. 49)

स्वासं अर्थात पूरक प्रस्वासं अर्थात् रेचक, इन दोनों की गति अर्थात् प्राणवायु

की गमनागमन रुप क्रिया का बंद हो जाना प्राणायाम का सामान्य लक्षण है।

(5) प्रत्याहार–स्वविषयासंप्रयोगे चित्त स्वरूपानुकार–

इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः (प. यो. सू. 2/54)

अपने विषयों के सम्बन्ध से रहित होने पर जो इन्द्रियों का चिन्तन के स्वरूप में तदाकार हो जाना है, वह प्रत्याहार है। योगी प्राणायाम के द्वारा मन और इन्द्रियों को शुद्ध कर लेता है तपोपरान्तं वह इन्द्रियों को उनके विषयों से निवृत करके मन में विलीन कर लेता है। यही प्रत्याहार है। इस स्थिति में इन्द्रियाँ अपने गोलकों में निर्विषय होकर स्थिर हो जाती हैं जिससे योगी का प्रत्याहार सिद्ध हो जाता है उसकी धारणा शक्ति भी प्रबल हो जाती हैं। उपर्युक्त वर्णन योग के पाँच वहिरंग साधनों का हुआ, जो शरीर अर्थात् मन और इन्द्रियों की वृत्तियों को शान्त करने का माध्यम है। अब हम पंतजलि योग गे आन्तरिक और महत्त्वपूर्ण अंगों का संक्षेप में वर्णन करते हैं–

(6) धारणा–देशबन्धश्रिन्तस्य धारणा॥ (प.यो.सूत्र 3/1)

इसका तात्पर्य है किसी एक बिन्दु या कोई ईष्ट मूर्ति में चित्त को ठहरा देना धारणा कहलाती है। (इसमें सर्व प्रथम साधक अपने स्वाध्याय, अथवा गुरुदेव के आदेशानुसार अथवा अपनी रुचि से किसी देवता की मूर्ति अथवा चित्र का निश्चय करके उसे अपने चिन्त में अचल स्थिर करना होता है। यह चुनाव साधक के लिए सावधानी से करना चाहिए क्योंकि जैसी धारणा करेंगे तदनुरुप सिद्धि प्राप्त होगी। किसी उग्र रूप, देवी देवता की धारणा करना साधक के लिए खतरना हो सकता है क्योंकि धारणा किया हुआ रूप ही अपने ध्यान में प्रत्यक्ष दिखलाई पड़ता है। अतः साधन उस रूप सिंह, हनुमान विराट स्वरूप, काली, भैरव आदि के दर्शनों से भयाक्रांत होकर विक्षिप्त हो जाया करते हैं। हमारे गुरुदेव बाबा अपने अनुयायियों को भगवान विष्णु के चतुर्भुज स्वरूप के ध्यान का उपदेश तथा विष्णु सहस्त्रनाम के जप को श्रेष्ठ साधन बतलाया करते थे। हुजूर आप स्वयं किस स्वरूप ध्यान में मस्त रहते इसकी जानकारी किसी को न थी क्योंकि उनके गुरुदेव किस स्वरूप ध्यान में मस्त रहते इसी जानकारी किसी को न थी क्योंकि उनके गुरुदेव का ज्ञान न्यारा था उसकी जानकारी किसी को भला कैसे हो सकती थी। क्योंकि वह अत्यन्त गोपनीय रहस्य था। हाँ, हुजूर संसारी लोगों को उनके मार्ग दर्शन हेतु कुछ उपयोग आदेश फरमा दिया करते थे।

(7) ध्यान–''तत्र प्रत्येकतानता–ध्यान॥'' प.यो. सूत्र 3/2)

उस धारणा वृत्ति का एक तार चलना हो ध्यान है। जिस ध्येय मूर्ति (वस्तु) में चित्त को लगाया जावे उसी में चित्त का एकाकार हो जाना, ध्येय मात्र की एक ही वृत्ति चलना और उसके बीच किसी अन्य वृत्ति का न उठना ध्यान है। यहाँ ध्यान के

सम्बन्ध में यह निवेदन है कि ध्यान समाधि अवस्था की पूर्ववस्था होती है। उसमें ध्याता ध्यान एवं ध्येय की त्रिपुटी बनी रहती है। ध्याता के चिन्त में ध्येय के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता सर्व वृति शून्यता होती है। लेकिन ध्यान "समाधि" में जब बदल जाता है, तो ध्याता और ध्यान क्रिया का लोप की पराकाष्ठा ही होती है।

समाधि–तदेवार्थ मात्र निर्मास स्वरूपशून्यमिव समाधिः॥

जब ध्यान करते-करते चित्त ध्येयाकार हो जाता है उसके अपने स्वरूप का अभाव सा हो जाता है और वह ध्येय में ही लीन सा हो जाता है तो ध्यान की वह गाढ़ स्थिति ही मसाधि अवस्था होती है। जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है कि ध्यान में ध्याता, ध्यान, और ध्येय की त्रिपुटी का आभास बना रहता है लेकिन समाधि अवस्था में ध्याता (चिन्त स्वरूप) ध्येय में ही लीन होकर तदाकारता ग्रहण कर लेता है, इस अवस्था में वह अपने इष्ट का ही रूप धारण कर लेता है। पतंजलि योग दर्शन के उपर्युक्त आठ अंगों का वर्णन करने का मेरा उद्देश्य पिष्ट पोषण करना कतई नहीं है। उपर्युक्त योग मार्ग के आलोक में, मैं अपने हुजूर बाबा मनोहर दास जी महाराज की योग धारणा का वर्णन करना ही अपना अभीष्ट उद्देश्य समझते हुए निवेन करना चाहता हूँ कि हुजूर के जीवन और उनके आध्यात्मिक दर्शन से यह सिद्ध होता है कि उन्होंने सम्पूर्ण यम-नियम को अपने आचार विचारों का अभिन्न अंग बना लिया था। उनके समकालीन सेवकें, एवं अनुयायियों द्वारा सुनाए संस्मरणों से इस बात की पुष्टि होती है कि अहिंसा सत्यादि तथा शौच सन्तोष तप आदि को उन्होंने अपने जीवन का अंग बना लिया था तथा वे सदैव एक ही आसन पर विराजा करते थे। उन्होंने आसन को सिद्ध किया हुआ था। समदम तितिक्षा आदि गुणों के द्वारा अपने मन एवं इन्द्रियों का पूर्ण निग्रह किया था। उनकी धारणा पर ब्रह्म में स्थिर हो गई थी वे हमेशा ईश्वर के ध्यान में डूबे रहा करते थे तथा सहज समाधि में स्थित होकर स्वयं ब्रह्म स्वरूप हो गये थे। हम संसारी लोगों को ईश्वर की याद दिलाते हुए कडा करते कि

"याद रख, याद है तो आबाद है,
भूल गया, तो बर्बाद है।"

हम उसकी याद उसका भजन–ध्यान कैसे करें इसकी युक्ति बतलाते हुए उनका कहना था कि जब तक हमारा चित्त अपने ध्येय (इष्ट रूप) में तल्लीन और तदाकार नहीं होता तब तक हमें अपने स्वरूप का बोध नहीं हो सकता। ज्यों हमारी धारणा शक्ति प्रबल होकर हमारे ध्यान में तदाकारता आती जायेगी हम ईश्वर के वास्तविक तत्व रहस्य को समझते जायेंगे भगवान के सुमिरन ध्यान के लिए वे अन्तर्मुखी वृत्ति का विशेष महत्त्व बतलाया करते थे जब तक हमारी इन्द्रियाँ एवं मन बाहरी विषयों में रमण करता है तब तक हम भजन एवं ध्यान के सही

अधिकारी नहीं जैसे गोपियाँ हर क्षण अपने प्यारे कृष्ण की याद में तन्मय रहा करती थीं सोते जागते उन्हीं में अपनी मन बुद्धि को लगाये रखती थीं ठीक उसी प्रकार अपने ध्येय के चिन्तन मनन एवं उसके ध्यान में डूबकर हम उसके ध्यान में डूबकर हम उसके साथ एकाकार हो जाएं यही साधना का रहस्य है। ध्येय में तदाकार होना ही ध्यान क्रिया का लक्ष्य होता है। हमें पूर्ण आनंद की प्राप्ति के लिए प्रभु के नाम रूप का माध्यम लेकर पूर्व तदकार होना होगा। जैसे एक सद्य व्याहता अपने पति के ध्यान में डूबी हुई उसके संसर्ग का आनन्द लेती है, उसे बाह्य जगत का कोई ध्यान नहीं रहता। वह अपने प्रिय के रूप यौवन, उसके स्वभाव एवं क्रिया कलापों को अपने ध्यान में साकार देखती है। ठीक इसी प्रकार साधक को अपने इष्ट के ध्यान में तदाकारता प्राप्त करने पर ही आनन्दानुभूति होगी।

हमारी साधना में प्रायः दिखावा अधिक होता है हम आँखें मीच कर शुरू तो भगवान का ध्यान करते हैं लेकिन कुछ क्षण भगवान के स्थान पर संसार के प्राणी एवं पदार्थों का ही ध्यान होने लगता है और यह ध्यान इतना दृढ़ता प्राप्त कर लेता है कि हम उसमें तदाकारता प्राप्त कर सुखी-दुःखी होने लगते हैं। इसका कारण है कि संसार के भजन ध्यान का हमें अनेकों जन्मों से अभ्यास किया हुआ है हम रात-दिवस इसी संसार के भजन ध्यान में डूबे रहते हैं। अगर संसारिक वस्तुओं और व्यक्तियों के ध्यान की तरह ही ईश्वर ही हमें हमेशा याद रहे तो हमारा मनुष्य जन्म लेना सफल हो जावे। हम बैठते तो हैं भगवान के ध्यान हेतु लेकिन हमारा मन बाह्य जगत में ही भटकता फिरता है। संसार को हम अपने ध्यान रूप में दिखाई पड़ते हैं, संसार में हम ज्ञानी-ध्यानी एवं भागवत भक्त के नाम से विख्यात हो जाते हैं सम्मान पाते हैं लेकिन हम स्वयं जानते हैं कि हम कितना भागवद्भजन करते हैं, कितना सच्चा उसका ध्यान करते हैं। हमारे दिखावे एवं वास्तविक ध्यान में बहतु बड़ा अन्तर होता है। हम वहाँ चाहते तो परमशान्ति का अनुभव करना हैं, लेकिन दिनों-दिन हमारे अन्तर अन्तर्द्वन्द बढ़ता जा रहा है हमारा अन्तः करण पूर्ण अशान्त रहता है उसका मूल कारण यह है कि हम सच्चे हृदय से सच्ची लग्न से ईश्वर से जुड़ते नहीं, उसकी ओर मुड़ते नहीं, अतः आनन्दघन की एक बूंद भी अपने इस शुष्क मरु-हृदयस्थल पर नहीं पड़ पाती है। हम चाहते कुछ हैं और करते कुछ और ही। अतः परम् शान्ति की इच्छा हमारी पूर्ण नहीं होती, जयशंकर प्रसाद के अनुसार–

ज्ञान दूर, कुछ क्रिया भिन्न है,
कैसे इच्छा पूरी हो मन की।
एक दूसरे से न मिल सके,
यह बिड़म्बना है जीवन की॥ (कामायनी से)

हमारा ज्ञान (विचार) और हमारी क्रिया में साम्य नहीं होने के कारण हमारी

इच्छाएँ पूर्ण नहीं होती। हम दिखावा अधिक करते हैं डूबते कम हैं। जिसकी कथनी से उसकी करनी (क्रिया) नहीं मिलती उसे पाखण्डी कहा जाता है।

एक रमणी अपने प्रेमी के प्रेम में डूबी उसकी यादों में, उससे मिलन की कल्पनाओं में डूबी उससे मिलने चुपचाप अंधेरी रात्रि में दूरस्थ घोर जंगल में चली जा रही थी रास्ते में एक मुसलमान नवाज पढ़ रहा था और आंखें बन्द करके बड़े ध्यान से अल्लाह मियाँ की इवादत में मस्त बैठा था, जव वह प्रेमान्ध रमणी उस रास्ते से जाने लगी तो वे साहब, उस पर बरस पड़े, वोले, ''हरामजादी, बदतमीज औरत क्या तुझे दिखाई नहीं दिया तुने हमारे पवित्र आसन पर पैर रखकर उसे अपवित्र कर दिया। उस औरत ने जवाब दिया ''हुजूर माफ करें उस वक्त में अपने प्रेमी के ध्यान में डूवी हुई थी, सो मुझे बाहरी दीनोदुनिया का कुछ भी आभास नहीं था। लेकिन आप तो उस परवरदिगार की याद में डूवे थे, आपको अपने आसन और मेरे यहाँ से गुजरने का कैसे पता चला–

दोहा– *मैं नरराती न लख्यौ, तुम कस लख्यौ सुजान।*

पढ़ कुरान वौरा भयो, रम्यौं नाहिं रहमान॥

जव एक तुच्छ संसारी मनुष्यों में अनुरक्त होकर मुझे उससे अतिरिक्त कुछ भी नजर नहीं आ रहा था, तो आप उस संसार के मालिक की याद में डूबे हुए को मेरे आगनन का पता कैसे चला।

''वास्तविकता यह है कि आपने सिर्फ कुरान को पढ़ा ही है उस परवर दिगारे आलम में डूवे नहीं।''

उपर्युक्त दृष्टान्त से यह बात स्पष्ट होती है कि हम वेद शास्त्रों एवं विभिन्न धर्म ग्रन्थों को पढकर ही अपने आपको तत्व वेत्ता और भगवद् भक्त मान बैठते हैं, उसमें वास्तविकता से डूबते नहीं।

हनारे गुरुदेव ईश्वर में अन्तर्मन से डूबे रहकर उसके साथ तदाकार हुए रहते थे। हन संसारी लोगों को भी अपने इस आचरण से मानो यह शिक्षा दे गये कि ऐ मनुष्यों। धर्म का साधना का दिखावा पाखण्ड है अगर सच्ची एवं वास्तविक शान्ति चाहते हो तो मन ही मन सदैव उसकी याद करते रहो, उसक ध्यान में अपने को जोड़ दो। इस संसार में जिस प्रकार तुम्हारा मन दौड़ लगाता है संसार के नश्वर भोग पदाथों झूठी मान बढ़ाई में हमारे बुद्धि लगी रहती है। ये दोनों अगर संसार से हटकर ईश्वर के ध्यान एवं भजन में जुड़ जाये तो, ऐ जीव। तेरा कल्याण अवश्य होगा यही सच्चा और अनुभूत गुरु ज्ञान है।

''इधर से उखाड़, उधर लगा॥''

हमारे गुरुदेव साधना का रहस्य बतलाते हुये कहा करते थे कि हमारी मन

बुद्धि संसारी हो रहे हैं संसार में यह दोनों बद्धमूल हो गये हैं। अतः वैराग्य एवं ज्ञान के कुदाल फावड़ों से इनको जड़ से उखाड़ इन्हें इधर (संसार) उखाड़ कर उधर (परमार्थ) लगा दे। जो मन बुद्धि तुझे अधोगति की ओर ले जा रहे हैं तू उन्हीं से सहयोग से अपने मूल उद्भव परमात्मा से जुड़ जायेगा। भगवान का भी यही आदेश है-

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धि निवेशंय।

निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्व न संसयः॥ (श्रीमद् भगवद् गीता 12/8)

"तू मन-बुद्धि को संसार के किसी प्राणी पदार्थ में न लगा कर, मुझमें ही लगा। इस प्रकार मन-बुद्धि सर्वथ मुझमें लगाने से तू उसी क्षण मुझे ही प्राप्त होगा इसमें कोई संसय नहीं।"

जैसा कि हमारे हुजूर बाबा का कहना था कि इस संसार में उखड़ और उस संसार में आबाद हो अर्थात तू अपने मन-बुद्धि को इस झूंठे संसार से हटा कर उस सत्यनारायण भगवान में जोड़कर तो देख। श्रीमद्भगवत् गीता में यत्र-तत्र भगवान का यही आदेश दिखाई और सुनाई पड़ता है कि यह संसार सुख रहित, क्षण भंगुर है, मनुष्य शरीर प्राप्त करके एक मात्र मुझ को ही भज।

"अनित्यमसुखंलोकमियं,

प्राप्यभजस्व माम्। (9/33)

बुद्धि को भगवान् में लगाने का तात्पर्य यह है कि बुद्धि में (भगवान को ही प्राप्त करना है ऐसा निश्चय रहे और मन को उसमें लगाने का भावार्थ यह है कि मन से प्रेम-पूर्वक भगवद्चिन्तन होता रहे। ये दोनों मन बुद्धि भगवान की ही देन हैं। अतः इनको उन्हीं में लगाना मेरा कर्तव्य है।

मन बुद्धि में संसार का नहत्व एवं इस जड़ संसार की प्रियता दृढ़ हो जाने के कारण भगवान अत्यन्त सनीप होते हुए भी अति दूर प्रतीत हो रहे हैं। अपने आप को भगवान के अर्पण कर देने से (कि मैं केवल भगवान का ही हूँ) यह दोनों (मन-बुद्धि) भी सरलता से भगवान में लग जाते हैं। हमारे गुरुदेव बावा मनोहरदासजी महाराज ने सच्चे हृदय से ईश्वर की शरण गति ग्रहण करली थी उनके स्वयं के ईश्वर (गुरुदेव) की शरण होने पर उनका शरीर मन-बुद्धि सब कुछ ईश्वर में तन्मय हो गया था। अतः उनका यह आदेश कि संसार से उखड़ों, ईश्वर में आबाद रहो साधना का सारभूत रहस्य है। पंजाब में "बुल्लेशाह" नामक एक प्रसिद्ध भगवद भक्त एवं पहुँचे हुये सिद्ध हुये हैं। वे अपने प्रारम्भिक जीवन में योग्य गुरु की तलाश में ग्राम-ग्राम, नगर-नगर भटकते फिरे थे। जहां भी सुनते वहों अपने साजवाज को लेकर पहुँचते। एक बार किसी गाँव में उन्होंने, तत्ववेत्ता एवं ब्रह्मनिष्ठ पहुँचे हुए गुरु के होने का समाचार सुना। वे उनसे मिलने को रवाना हो

गये। गाँव के कुछ निकट ही एक खेत में कार्यरत एक व्यक्ति से पूछा कि क्या कर रहे हैं।

वह बोले यहाँ से उखाड़ कर, वहाँ लगा रहा हूं। बात यह थी कि वे सज्जन प्याज की पौध को उसके मूल स्थान से उखाड़कर दूसरी क्यारियों में रोपन कर रहे थे। वुल्लेशाह उस गाँव में पहुंचा। उल्लेखनीय है कि बुल्लेशाह उस समय पंजाब भर में राग रागनियों के लिए ख्याति प्राप्त गायक था। लोगों के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। उन्हें विश्वास ही नहीं हो रहा था कि वुल्लेशाह जैसा महान गायक उनके छोटे से गाँव में भी आ सकता है। लेकिन हकीकत में उन्होंने देखा। बुल्लेशाह ने पूछा कि क्या अमुक सिद्ध पुरुष इसी गाँव में रहता है?'' लोगों ने कहा ''जी हाँ।'' आप जिस रास्ते से इस गाँव में आये हैं वे उसी के नजदीक हैं अपने खेत पर रहा करते हैं। वुल्लेशाह का माथा ठनका, उन्हें एक साधारण किसान मिला था, लेकिन वह कोई संत नहीं था। लोगों ने कहा कि हनारे गाँव में तो बस वही एक है जो अपने उच्च विचारों एवं आदर्श आचार के लिए जाने जाते हैं बुल्लेशाह ने लोगों से कहा कि आज मेरा गाना इसी गाँव में होगा लेकिन शर्त यह है कि आप लोग उन्हें (सतपुरुष) भी मेरा गाना सुनने बुलाएँ।

लोगों ने कहा कि ''वे ना तो किसी का गाना सुनते हैं और ना ही किसी अन्य संसारी क्रिया व्यापार में उनकी रुचि है। वे एकांत में अपने खेत पर चुप-चाप कार्यरत रहा करते हैं। उन्हें न किसी ने पूजा पाठ, भजन-ध्यान करते देखा है और ना ही वे साधु-संतों जैसी वेशभूषा तिलक छापा आदि धारण करते हैं उनका ज्ञान न्यारा है'' वह बहुत कम बोलते हैं, और जो भी बोलते हैं उसका अर्थ हमारी मोटी बुद्धियों में तो कुछ आता नहीं उनकी तातों का रहस्य तो वे स्वयं ही जाने। बुल्लेशाह को उसकी रहनी-सहनी एवं उनके व्यक्तित्व के बारे में उन अनपढ़ ग्रामीणों से सुनकर पूर्ण विश्वास हो गया कि जिस महात्मा की तुझे तलाश है, हो सकता है ये वे ही तत्वदर्शी योगी हों'' उन्होंने लोगों से मिन्नतें की और कहा कि किसी भी प्रकार से रात्रि को होने वाले उनके गाने में लेकर आओ, लोगों ने कहा, ''जी, अवश्य हम उनके पास जायेंगे और उनको यहाँ आने के लिए राजी कर लेगें आपका गाना हमें अवश्य ही सुनाओ। बुल्लेशाह के उस गाँव में आने की खबर बिजली की गति से आस-पास के क्षेत्रों में फैल गई हजारों की तादाद में लोग उस गाँव में बुल्लेशाह के दर्शनों एवं उनके गाने का आनन्द लेने हेतु आ पहुँचे।

उधर ग्रामवासियों ने उन सज्जन पुरुष को भी गांव में आकर रागनी सुनने के लिए राजी कर लिया। लोगों की प्रसन्नता के लिए उन्होंने उनका प्रस्ताव मान लिया और उनके साथ-साथ गांव आ गये। रात्रि को हजारों श्रोताओं के बीच बुल्लेशाह का गाना शुरु हुआ। उस सभी में एक स्थान पर वे सज्जन भी विराजे हुए थे। बुल्लेशाह ने बड़े ननोयोग से अनेक राग रागनियों को सुनाया। जनता उसके गीतों को सुनकर झूम गई। ऐसा प्रभावोत्पादक गाना उन्होने अपने जीवन में नहीं सुना

था। यहीं उल्लेखनीय दात यह है कि बुल्लेशाह उस सभा में जो भी राग रागनी गाता तो चारों और घूम-घूम कर गाता जब रागनी की तान (सम) आती तो उसका तोड़ उन महात्मा के चरणों में ही आता। उस प्रकार उसके समस्त रागों एवं रागनियों की तानें उन पर ही टूट रही थीं और संसारी श्रोताओ की ओर बुल्लेशाह की दृष्टि न थी, लोग वाह! वाह बादशाह कह कर बुल्लेशाह की प्रशंसा कर रहे थे, उस पर चाँदी के सिक्कों की, स्वर्णाभूषणों की वर्षा हो रही थी, लेकिन बुल्लेशाह को कुछ लेना देना नहीं था। वह तो अपने सद्गुरु की प्रसन्नता के लिए गा रहा था। संसारी मान बढाई, धन दौलत के लिए बुल्लेशाह नहीं गाता उसे तो भगवान की भक्ति का मार्ग चाहिए था। जब उसका गाना हो रहा था और उसकी तान टूटने वाली थी वह सज्जन खड़े हो गये दोले–''बुल्लेशाह! ये सारी तानें मुझ पर ही क्यों तोड़ रहे हैं। बुल्लेशाह उनके चरणों में गिरकर अर्ज करने लगा'' हुजूर! मुझे सिर्फ आप ही से काम है, इस संसारी लोगों से मुझे कुछ लेना देना नहीं। ये लोग मुझे झूठी मान बढ़ाई वाह, वाह दे रहे हैं, मुझे सोने चाँदी का प्रलोभन दे रहे हैं, अपना हार्दिक प्रेम भी इन्होंने दिया है, लेकिन लगता है आपको मेरा गाना पसन्द नहीं आया, क्योंकि आपने मुझे अभी तक कुछ नहीं दिया। यह संसारी पदार्थ तो एक दिन नष्ट होने वाले हैं। ''यह झूठी मान बढ़ाई की बातें भावुक लोगों का प्रलाप मात्र हैं। मेरे मन को इन से शान्ति नहीं मिलती मुझे उस ज्ञान को प्रदान करें, जीवों को परम शान्ति प्रदान करता है। मुझे उस योग का मार्ग बतलाएँ यही मेरी अर्ज है यही मेरी आरजू है मैं आपकी शरण आया हुआ बन्दा हूँ।'' साधारण इन्सान के लिबास में छुपे उन महात्मा ने बुल्लेशाह से कहा कि बुल्लेशाह–हमारी देन में विलम्ब नहीं होता, हमनें उस योग के रहस्य को उसी क्षण बतला दिया, जब रास्ते में आते समय तुमने हमें नमस्कार कहा और पूछा क्या कर रहे हो? बुल्लेशाह ने कहा–हुजूर! मैं कुछ समझा नहीं, आप प्याज की पौध उखाड़ कर उसे दूसरी जगह लगा रहे थे! आपने मुझे कोई रहस्य की वात नहीं बतलाई, उन्होंने कहा ''बुल्लेशाह! सारे योग मार्गो का परम् रहस्य यह है कि–

तुम इस संसार से उखड़ जाओ, और ईश्वर के दरबार में आबाद हो जाओ। ''अपने मन-बुद्धि को इस संसार से उखाड़ कर भगवान में लगा के देखो क्या होता है।''

''बुल्लेशाह! तुन आपे से बाहर हो रहे हो, अपनी वृत्तियों को अर्न्तमुखी करके आपे में प्रवेश करो देखो क्या अनुभव होता है। ''उन्होंने बुल्लेशाह को योग के गूढ़तम रहस्यों की जानकारी प्रदान करके उसे अपना जैसा बना लिया यह बात इतिहास प्रसिद्ध है कि बुल्लेशाह आगे चलकर एक ऊँचे दर्जे के सिद्धि पुरुष हुए। इस आख्यान को पढ़कर आपको लगा होगा कि जैसा वर्णन बुल्लेशाह के सद्गुरु का किया गया है वे सारे के सारे लक्षण हमारे गुरुदेव बाबा मनोहर दास जी महाराज में थे वह एक साधारण संसारी मनुष्यों के वेश में महान् संत थे तत्व वेत्ता

थे, ब्रह्मनिष्ठ महात्मा थे। लेकिन उनकी अट-पटी रहस्य पूर्ण बातों को साधारण संसारी नहीं समझ पाते थे।'' गुरुन का ज्ञान न्यारा है तू समझा नहीं, मेरे मटा।''

उपर्युक्त सम्पूर्ण निवेदन का सार यह है कि गुरुदेव हम संसारी जीवों को उद्‌बोधन देते हुए कहा करते थे कि ''याद रख याद है तो आबाद है और भूल गया तो बर्बाद है।'' अर्थात् हमें हमेशा उस ईश्वर को स्मरण रखना चाहिये, उसको याद करने की विधि का निर्देश करते हुए उन्होंने बतलाया कि भजन सुमिरन पूजा पाठ को गुप्त रखना चाहिये उसके प्रदर्शन से अपेक्षित सिद्धि (प्रभु प्राप्ति) नहीं होती। भगवान का सुमिरन सतत् तथा उसका ध्यान तदाकारता पूर्वक हो पहले हम अपने मन बुद्धि को संसार से उखाड़ें और फिर ईश्वर में जोड़े तो तत्काल हमें ईश्वर के दर्शन, आत्म साक्षात्कार होगा। मन की ताकत का खुलासा करते हुए आप कहा करते थे कि हम अपने मन से जिसकी कल्पना चिन्तन एवं मनन करने लगते हैं तो हमारा चित्त तद्रुपता को प्राप्त हो जाता है। ध्यान के प्रकरण में ऊपर कहा जा चुका है कि द्रष्टा दर्शन और दृश्य की त्रिपुटी से देखना सम्भव होता है। उसी प्रकार हम किसी ध्येय (इष्टमूर्ति) में अपने चित्त को लगाकर एकतानता की स्थिति प्राप्त कर लेते हैं। अतः हमारा मन चित्त जिसकी ओर लग जाता है वह स्वयं उसके रूप में ही रंग कर तद्रुपता ग्रहण कर लेता है। जब यह किसी संसारी व्यक्ति अथवा पदार्थ में लग जाता है तो स्वयं भी उसका रूप धारण कर लेता है और सद्‌गुरु कृपा–प्रेरणा से यह मन ईश्वर में लग गया या ब्रह्म के चिन्तन में लग गया तो स्वयं भी ब्रह्म स्वरूप हो जाता है–महात्मा ''सुन्दर दास'' ने कैसी सुन्दर बात लिखी है–

जो मन नारि की ओर निहारत, तौ मन होत है नारी कौ रूपा।

जो मन काहूपै क्रोध करे, तौ क्रोधमयी है जाय तद्रूपा॥

जो मन माया ही माया रटै नित, तौ मन बूड़त माया के कूपा।

सुन्दर जो मन ब्रह्म विचारत, तो मन होत है ब्रह्म स्वरूपा॥

अतः हुजूर बाबा महाराज ने मन को एक मात्र ब्रह्म चिन्तन में लगा दिया और उसके साथ एकात्मभाव, तद्रुपता की प्राप्ति करली थी। हम संसार में रचें-पचे मन वालों को उस आनन्द सागर प्रभु की याद करने और हमेशा उसे याद रखने के लिए उपदेश किया। भजन बन्दगी को प्रेम करने और संसार में अभिनान शून्य होकर जीव मात्र के हित में लगे रहने को वह सर्व धर्म शास्त्रों का सार बतलाते थे।

''दीनताई, दया और नम्रताई दुनिया बीच,

बन्दगी से प्यार राखि, भूखे को खिलाएगा॥''

कहकर एक ऐसी आचार संहिता का बखान करते थे जो साधकों को सिद्धदायक और संसारी लोगों को धनधान्य से परिपूर्ण करके सर्वसुखों के देने वाली है। यह सभी धर्मों एवं सम्प्रदयों द्वारा सर्व सम्मति से स्वीकार्य सिद्धान्त वचन है, इनको आप स्वयं ने अपने जीवन का अंग ही बना लिया था।

हमारे गुरुदेव की साधना पर प्रकाश डालते हुए हमारी लघु काशी वैर के एक विद्वान् कवि लिखते हैं–

अलख अलख कहते रहे, मानें न किसी की दाव।

साधा था पूरा योग, ब्रह्म वेद ज्ञानी थे॥

ज्ञानी थे ऐसे पार पाया नहीं किसी ने भी।

योगी-यती, जती-सती हारे ब्रह्म ज्ञानी थे॥

ध्यानी थे हरी के मान ममता से रहे दूर,

सबके शुभ चिन्तक भक्ति शक्ति के दानी थे।

दानी थे दयाल थे दीनों के दुःख हरनहार,

बाबा मनोहरदास, सर्वगुण-खानी थे॥

❀❀❀❀❀

जग अँधियारा नैन न सूझे, जीव भटक भरमाता है।

ज्ञान-ज्योति प्रकाश दिखाकर, सद्गुरु राह दिखाता है॥

हरिः ॐ तत्सत्। हरिः ॐ तत्सत्॥ हरिः ॐ तत्सत्॥।

❑❑❑

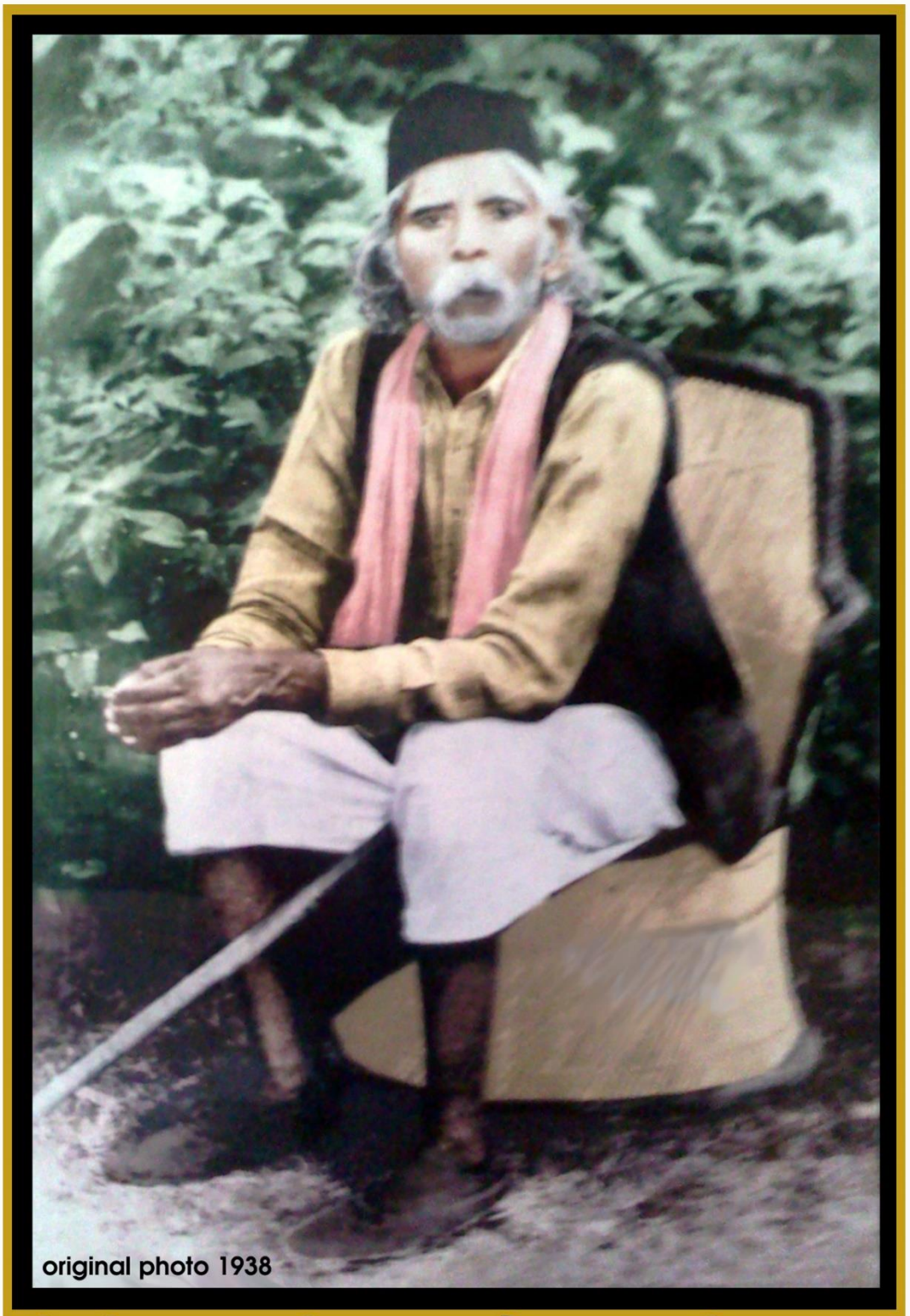

श्री श्री १००८ श्री बाबा मनोहर दास जी महाराज